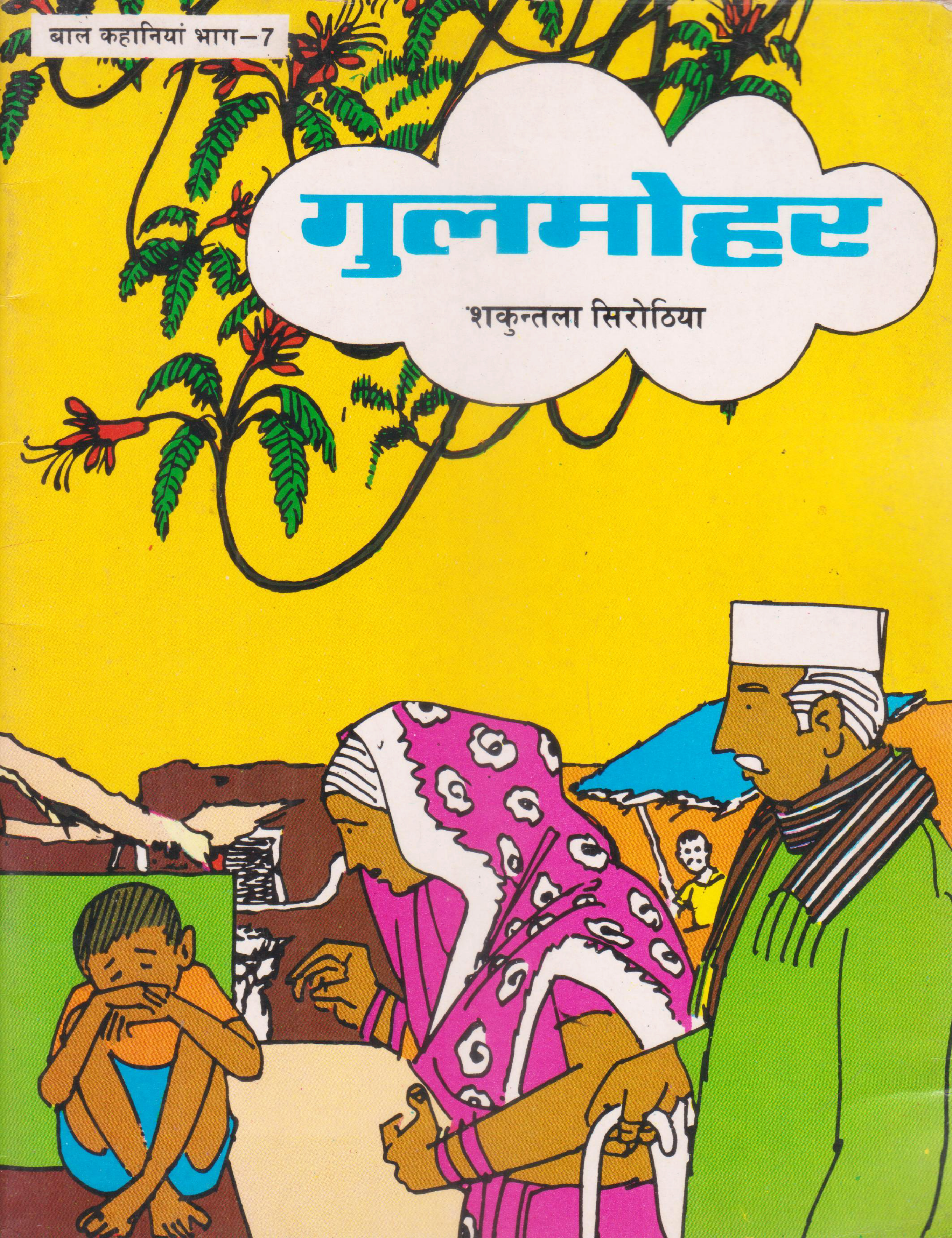
बाल कहानियां भाग–7

गुलमोहर

शकुन्तला सिरोठिया



बाल कहानियां भाग-7

गुलमोहर

शकुन्तला सिरोठिया

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

चैत्र 1912 (अप्रैल 1990)

मूल्य : 12 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- एल.एल.ए. आडीटोरियम, 736, अन्नासलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001
- 10-बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004

दिल्ली प्रेस भवन, ई-3, झंडेवाला एस्टेट, रानी झांसी मार्ग, नई दिल्ली-110055 द्वारा मुद्रित।

प्रकाशकीय

कहानियां बच्चों को सबसे अधिक आकर्षित करती हैं। यदि उनमें मनोरंजन के साथ-साथ कोई शिक्षा या प्रेरणा भी हो, तो उनकी सार्थकता और भी बढ़ जाती है।

किसी समय कहानियों में उपदेश अधिक होते थे। आज वह समय नहीं रह गया है। आज के वैज्ञानिक युग में बच्चों को सीधे-सीधे उपदेश पसंद नहीं है। विज्ञान और उससे जुड़ी अन्य जानकारियों ने उनके मानसिक स्तर को एक नया धरातल प्रदान किया है। किंतु इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि बच्चों को सद्प्रवृतियों और स्वस्थ जीवन-मूल्यों की ओर भी प्रेरित किया जाए। मनोरंजन को शिक्षा और प्रेरणा से जोड़ने का एक उपाय प्रेरक और शिक्षाप्रद कहानियों को रोचक और मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत करना भी है। ऐसी कहानियों को बच्चे आसानी से ग्रहण कर सकेंगे और लेखक भी अपने उद्देश्य में सफल होगा।

प्रकाशन विभाग का सदैव यही प्रयास रहा है कि अपने बाल पाठकों को मनोरंजक और शिक्षाप्रद कहानियां उपलब्ध कराई जाएं। इसी क्रम में 'बाल कहानियां' शृंखला का प्रकाशन हो रहा है। 'गुलमोहर' इसी शृंखला की एक और कड़ी है। इसकी लेखिका हैं—शकुन्तला सिरोठिया..।

आशा है, इन कहानियों से बच्चों का मनोरंजन होगा और साथ ही उन्हें स्वस्थ जीवन जीने की प्रेरणा मिलेगी।

डा. श्याम सिंह शशि

निदेशक

विषय-सूची

शेरू की जासूसी

चाचा प्रताप की गुस्से और झुंझलाहट-भरी आवाज नीचे बरामदे तक आ रही थी। हां, उनकी बेटी नीली का स्वर कुछ साफ नहीं सुनाई पड़ रहा था। वह जो कुछ कह रही थी, उसे चाचा मान नहीं रहे थे। शेरू नीचे खड़ा था। अपना नाम बार-बार चाचा के मुंह से सुन कर वह चौकन्ना हो गया था और उसके कान खड़े हो गए थे। पूरी बात तो वह बेचारा सुन नहीं सका था, किन्तु इतना तो समझ ही गया था कि जरूर उसी को लेकर चाचा और नीली में बात हो रही है। आखिर बात का पता लगाने के लिए वह ऊपर की ओर चल दिया। वह अभी दो-तीन सीढ़ी ही चढ़ा होगा कि उसने देखा बिल्लू मुंह में कुछ दबाए चला आ रहा है। उसे देख कर बिल्लू ठिठक गया।

शेरू अपने बेटे बिल्लू की शैतानियों से खूब परिचित था। किन्तु बिल्लू जितना चंचल और शैतान था, उतना ही प्यारा भी था। झबरा गोल-मटोल बिल्कुल एक बड़ी गेंद जैसा था। उसकी गोल-गोल आंखें शीशे की तरह चमकदार थीं। वह चाचा का पाइप चबा रहा था। भूरे रंग के पाइप को हड्डी की तरह चबाने में उसे बड़ा मजा आ रहा था। पाइप चाचा की मेज पर रखा था। किसी तरह उछल कर वह मेज के ऊपर चढ़ गया और उसे वहां से उठा लाया था। इस उछल-कूद में उसने जरूर कुछ गिराया-लुढ़काया भी होगा। पाइप मुंह में उठा कर वह दौड़ा चला आ रहा था, किन्तु नीचे शेरू को देख कर वह ठिठक कर खड़ा हो गया। शेरू ने जब चाचा का पाइप उसके मुंह में देखा, तो गुर्रा कर उस पर झपटा। बिल्लू ने भागने की भरसक कोशिश की, किन्तु शेरू के आगे उसकी कुछ नहीं चली। शेरू ने झपट कर उससे पाइप छीन लिया और उसे अपने मुंह में दबा कर वह ऊपर की तरफ जाने लगा।

उसने सोचा कि चाचा को पाइप देकर वह उन्हें खुश कर देगा। तभी उसे फिर सुनाई दिया—"अच्छी तरह समझ लो नीली, मैं इन दोनों कुत्तों को किसी भी तरह शाम की पार्टी में नहीं ले जा सकता। कभी कहीं कुत्तों को भी पार्टी में दावत खाते देखा है? तुम तो बिल्कुल पागलपन की बातें करती हो। मुझे कुत्तों से घृणा है।"

"लेकिन चाचा, घर में कोई और है भी तो नहीं। मैं इन्हें घर में इतनी देर के लिए तो अकेला नहीं छोड़ सकती। आप इन्हें अंदर मत ले जाइएगा। इन्हें कार में ही छोड़ देंगे। ये कार की रखवाली करते रहेंगे।"

किन्तु नीली की बात पर चाचा और भड़क उठे, "उहं, कार की रखवाली करेंगे, ये कुत्ते! तुम्हें क्या हो गया है, नीली?"

अब शेरू इतना तो समझ गया कि ये लोग उन्हें छोड़ कर कहीं जाने की बात कर रहे हैं। यह तो वह जानता था कि नीली उन दोनों को बहुत प्यार करती है, किन्तु चाचा पता नहीं उससे और

बिल्लू से क्यों नाराज रहते हैं? उन्हें पाइप देने का शेरू का सारा उत्साह खत्म हो गया। फिर भी वह दबे पांव आगे बढ़ा। किवाड़ को पंजों से खरोंचा। मुंह में पाइप होने के कारण वह भौंक नहीं सका। किवाड़ खुल गया। नीली पार्टी में जाने के लिए अपने और चाचा के कपड़े प्रेस कर रही थी।

शेरू को देख कर नीली मुस्करा दी, किन्तु चाचा का चेहरा कड़ा हो गया। "उफ! मेरा पाइप। हद हो गई नीली । बर्दाश्त के बाहर है यह सब।"

नीली ने भी देखा, तो उलझन में पड़ गई। चाचा को समझाने लगी—"चाचा, प्लीज क्रोध मत कीजिए शेरू पर। आप अक्सर अपनी चीजें इधर-उधर रख कर भूल जाते हैं और फिर ढूंढते हैं। शेरू ने इसे कहीं पड़ा पाया होगा और अब आपके पास उठा कर ला रहा है। हैं न शेरू?"

"नहीं, मैंने अपना पाइप मेज पर रखा था। अगर ये कुत्ते मेरे कमरे में गए होंगे तो..." चाचा ने दृढ़ता से कहा।

"शेरू कभी आपके कमरे में नहीं जाता। वह जानता है कि आप उसका वहां जाना पसंद नहीं करते," नीली ने कहा।



चाचा ने पाइप को घुमा-फिरा कर देखा और बोले, "कम्बख्त ने इसे जगह-जगह से खुरच डाला है। नालायक! कान खोल कर सुन लो नीली, मैं अब तो इन्हें कार में पैर तक नहीं रखने दूंगा। ये घर में ही रहेंगे। पक्की बात है।"

''ओह चाचा, कितनी ज्यादती करते हैं आप, इन बेचारों के साथ,'' नीली ने दुखी होकर कहा।

क्रोध से भरे चाचा कमरे से बाहर चले गए। नीली ने ठंडी सांस भर कर शेरू को थपथपाते हुए कहा, ''एक पुराने पाइप के लिए इतना महाभारत मचाना क्या अच्छी बात है, शेरू? तुम भी बुड्ढे होने पर ऐसे ही मत बन जाना। खैर, कार चाचा की है, जिसे चाहें बैठाएं, जिसे चाहें न बैठाएं। मेरी मित्र रानू के जन्मदिन की पार्टी न होती, तो मैं भी तुम्हें छोड़ कर न जाती। खैर, आज तो तुम्हें घर पर ही रहना पड़ेगा।''

शेरू ने कूंऽकूंऽ किया। उसे अकेले घर पर नीली के बिना रहना बिल्कुल पसंद नहीं था। तभी उसने मुंह ऊपर किया और झटके के साथ खड़ा हो गया।

चाचा अखबार कुर्सी पर छोड़ कर भूल गए थे शायद। वह अक्सर अखबार मोड़ कर बगल में दबा कर चलते थे। शेरू, चाचा और नीली की तो पूरी बात नहीं समझा, किन्तु इतना तो समझ ही गया कि चाचा उससे नाराज हैं और ये लोग उसे छोड़ कर कहीं बाहर जा रहे हैं। कितना अच्छा होता, यदि वह उन्हें प्रसन्न कर सकता। उसने मौका देखा और मुड़ा हुआ अखबार धीरे से मुंह में दबा कर उन्हें देने चला।

''समझ गई। तुम अखबार चाचा को देने जा रहे हो न? इसे यहां भूल कर अब वह चारों तरफ ढूंढेंगे। तुम उन्हें अखबार दोगे, तो वह जरूर खुश हो जाएंगे। बहुत समझदार बच्चे हो, जाओ,'' नीली ने शेरू की तरफ प्रसन्नता से देखा।

शेरू कमरे से बाहर निकल गया, तभी बिल्लू भी उसे ढूंढता हुआ ऊपर आ रहा था। उसे देख कर वह भी पूंछ हिलाता हुआ पीछे दौड़ा, मानो कह रहा हो, 'रुक जाओ, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूं।' किन्तु शेरू गुर्राया, मानो कह रहा हो, 'वहीं रहो। मेरे साथ मत आओ।'

बिल्लू रुक गया। शेरू, चाचा के पढ़ने के कमरे में गया। दरवाजा बंद था। धीरे से धक्का देकर वह जल्दी से अंदर घुस गया। किन्तु यह क्या! वहां चाचा नहीं, कोई अजनबी खड़ा था। दरवाजे की तरफ उसकी पीठ थी। वह मुंह पर मफलर लपेटे था और चाचा की मेज की दराजों में जल्दी-जल्दी कुछ ढूंढ रहा था। शेरू उसका मुंह नहीं देख पाया।

उस अजनबी आदमी ने कुछ ढूंढने के लिए मेज के ऊपर और अंदर की सब चीजें उथल-पुथल कर डाली थीं। एकाएक खुशी की दबी-सी आवाज उसके मुंह से निकली, ''वाह! मिल गई।''

ठीक उसी समय शेरू अंदर घुसा। समझदार शेरू को यह समझते देर नहीं लगी कि यह आदमी मित्र नहीं कोई दुश्मन है। चाचा के दोस्त तो कभी इस प्रकार मुंह छिपा कर अकेले कमरे में नहीं आते, न कमरे की चीजें छूते हैं और न उठाते हैं। ऐसे आदमी के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, शेरू यह जानता था। मुंह का अखबार वहीं ज़मीन पर छोड़ कर वह गुर्रा कर उस अजनबी पर झपटा। आदमी ने पलट कर देखा, तो डर से पीला पड़ गया और आने वाले खतरे को समझ गया।

उसने जल्दी से एक कुर्सी उठा कर शेरू पर फेंकी और एक लिफाफा उठा कर खुली खिड़की की तरफ बढ़ा।

कुर्सी लगने से शेरू दर्द से दुहरा हो गया, किन्तु उसने हिम्मत नहीं हारी और उठ कर अजनबी को पकड़ने झपटा। किन्तु तब तक वह आदमी बाहर कूद चुका था। खिड़की का पल्ला पकड़ कर कूदने से एक पल्ला बंद हो गया था। शेरू ने भी खिड़की से छलांग लगा दी, किन्तु एक पल्ला बंद होने के कारण तगड़ा एलसेशियन शेरू खिड़की के कांच से जा टकराया। शीशा उसकी पीठ को घायल करता हुआ टूट गया। किन्तु अपनी चोट की परवाह न करता हुआ वह भी बाहर घास पर आदमी के पीछे कूदा।

इधर जब चाचा पाइप धोकर उसे पोंछते हुए अपने कमरे में पहुंचे तो कमरे की हालत देख कर चिल्ला उठे, "नीली! नीली! जल्दी यहां आओ।"

चाचा की घबराहट भरी आवाज सुन कर नीली ने अपने हाथ का काम छोड़ा और "कहां हो चाचा तुम?" कहती हुई नीचे भागी। कमरे में पहुंच कर सबसे पहले उसने देखा कि चाचा बिल्लू की गर्दन पकड़े मेज के पास खड़े थे। नीचे फटा हुआ अखबार पड़ा था। मेज की चीजें इधर-उधर पड़ी थीं। दवात से स्याही नीचे लुढ़क रही थी। कलम-पेंसिल सब इधर-उधर बिखरी थीं। नीली कमरे की हालत देख कर भौंचक्की और भयभीत हो गई। चाचा बिल्लू को पकड़े क्रोध से दांत पीस रहे थे।

"अरे बिल्लू यह क्या किया तूने?" नीली ने दुखी होकर कहा। अब उसे भी विश्वास हो गया था कि यह सब बिल्लू ने ही किया है। उसे क्रोधित चाचा की पकड़ में देख कर उसका और किसी तरफ ध्यान ही नहीं गया। चाचा जब कमरे में घुसे, तब बिल्लू जमीन पर पड़ा अखबार फाड़ रहा था और मेज का सामान बिखरा पड़ा था, इसलिए चाचा का ध्यान भी दूसरी तरफ नहीं गया। दोनों बिल्लू को ही अपराधी समझ रहे थे।

नीली की बात सुन कर चाचा ने कहा, "क्या नहीं किया इसने?" मेरा पाइप काट-काट कर बर्बाद कर दिया। अखबार के चिथड़े कर दिए और मेज की हालत तो तुम देख ही रही हो।"

"लेकिन चाचा पाइप तो शेरू लाया था और वह कभी मेज पर चढ़ कर इस प्रकार चीजें उलट-पुलट नहीं कर सकता। इतनी समझ तो शेरू में है।"

नीलू के समझाने पर चाचा ने कहा, "चलो, मैं मान लेता हूं कि यह सब शेरू ने नहीं किया, किन्तु यह बदमाश बिल्लू तो कर सकता है। शेरू इसी से पाइप छीन कर लाया होगा।"

"जी हां, शेरू बड़ा समझदार है।" शेरू की तारीफ सुन कर चाचा फिर भड़क उठे, "क्या कहने हैं इसकी समझदारी के। तुम तो बिल्लू के लिए भी यही कहोगी। ले जाओ इसे मेरी आंखों के सामने से। इसकी कस कर पिटाई की जाए तो इसे अक्ल आ जाएगी।"

फिर चाचा मेज के कागजों को इधर-उधर करते हुए चिंतित से बोले, "किंतु नीली अब इन्हें चाहे जितना भी पीट लो, जो नुकसान हो गया है वह तो अब कभी भी पूरा नहीं हो सकता। हाय! अब क्या करूं मैं?"

नीली भी चिंतित हो उठी, "क्या कोई जरूरी चीज खो गई चाचा?"

बड़ी गम्भीरता से चाचा ने कहा, "हां, बहुत जरूरी चीज। तुम्हारी दादी की वसीयत, जो इसी दराज में रखी थी दिखाई नहीं दे रही है।"

दुख से उनका चेहरा मुरझा गया। नीली भी बड़ी गम्भीर हो गई, "सचमुच क्या इन कुत्तों ने...?"

बात चिंता की थी। कुछ वर्ष पहले दादी, चाचा प्रताप अर्थात अपने पुत्र से नाराज हो गई थीं और अपने पुत्र का नाम जायदाद से काट दिया था। सब जानते थे कि चाचा को दादी एक पैसा भी अपनी सम्पत्ति में से नहीं देंगी। किन्तु मृत्यु से पूर्व उन्होंने इरादा बदल दिया। वह बेटे की सेवा और श्रद्धा से शायद प्रसन्न हो गई थीं। अपनी पोती नीली के प्यार ने भी उनके विचार बदल दिए थे, जिसकी मां भी उसे छोटी-सी ही छोड़ कर मर गई थी। नई वसीयत के अनुसार सारी जायदाद उन्होंने पुत्र प्रताप और पौत्री नीली के नाम कर दी थी। इसके कारण चाचा के कई रिश्तेदार उनके दुश्मन हो गए थे। आज वही वसीयत गायब थी।

दुखी से चाचा सिर पकड़ कर बैठ गए। "यदि वसीयत नहीं मिली, यदि उसे कुत्तों ने फाड़ कर कहीं फेंक दिया तो हम बरबाद हो जाएंगे नीली। हम वैसे ही कर्ज में डूबे हुए हैं। हम भिखारी बन जाएंगे। उफ! अब मैं क्या करूं, तुम्हीं बताओ नीली।"

नीली की आंखों में भी आंसू भर आए। उसने बिल्लू की ओर देखा जो डर से दुम दबाए उसके पैरों के पास दुबका बैठा था। वह बोली, "चाचा, यदि बिल्लू वसीयत के कागज बाहर ले गया होगा तो शेरू जरूर उन्हें वापस ले आएगा।"

चाचा फिर भड़क उठे। व्यंग्य से बोले, "जरूर ले आएगा, उसके टुकड़े तो ले ही आएगा।"

इधर चाचा और नीली वसीयत के कागज कमरे में न पाकर दुखी थे, उधर चोर खिड़की से कूद कर कमरे से बाहर निकल गया था और शेरू भी उसके पीछे-पीछे कूदा। वह कूदते समय खिड़की के कांच से घायल भी हो गया लेकिन फिर भी शेरू ने तेजी से झपट कर चोर को जा पकड़ा। चोर अपने को बचाने के लिए कार की गैरेज में जा घुसा। अंदर घुस कर वह भीतर से बंद करने की कोशिश कर ही रहा था कि शेरू वहां पहुंच गया।

गुस्से से गुर्राता शेरू चोर के हाथ से वसीयत के कागज छीनना चाहता था और चोर उसे बचाने के लिए हाथ ऊपर किए था। वह जानता था कि कागज चाचा के हैं और उसे उन्हें चोर से लेकर चाचा को देने हैं। चोर घबरा गया। "हिश। हिश। दूर हट," कह कर वह इधर-उधर कूद कर स्वयं को बचाने की कोशिश कर रहा था किन्तु शेरू ने झपट कर दांतों से कागज पकड़ ही लिए।

शेरू ने चोर के हाथ से उसे अपनी ओर खींचा तो कागज का आधा टुकड़ा शेरू के मुंह में और आधा चोर के हाथ में रह गया। हड़बड़ाहट में और बचने की कोशिश में चोर का हाथ कार की खिड़की के अंदर चला गया और कागज का टुकड़ा कार के अंदर गिर गया। शेरू एक मिनट भी

गंवाए बिना मुंह का कागज लेकर चाचा को देने के इरादे से गैरेज से निकल कर घर के अंदर दौड़ा गया। बेचारा इतना नहीं समझता था कि वसीयत का आधा ही टुकड़ा उसे मिला है। उसने समझा कि चोरी की चीज तो उसे मिल ही गई है।

इधर चोर यह देख कर कि उसकी मेहनत बेकार गई, कुत्ते के पीछे दौड़ा। उसने सोचा कि कुत्ते से किसी प्रकार कागज छीन ले तो कार के अंदर पड़ा कागज भी वह बाद में आकर निकाल लेगा। उसने शेरू का पीछा किया किन्तु शेरू उससे तेज दौड़ कर घर के अंदर घुस गया

चोर ने खिड़की के पास खड़े होकर नीली और चाचा को बातें करते सुन लिया। अब अंदर जाने में खतरा था। वह बड़बड़ाता हुआ और गुस्से से दांत पीसता हुआ बाहर ही रह गया। अब वह कार में से आधी वसीयत उठाने के लिए गैरेज की तरफ बढ़ा। यह एक संयोग ही था कि कार साफ करने के लिए चौकीदार ने जैसे ही गैरेज का ताला खोला, तभी उसके किसी मिलने वाले ने फाटक से आवाज लगाई। चौकीदार दरवाजा ऐसे ही उढ़का कर बाहर चला गया। उसने सोचा कि फाटक पर तो वह खड़ा ही है, अभी वापस आ जाएगा। अब चोर मुड़ कर फिर गैरेज की तरफ गया। किस्मत शायद उसके खिलाफ थी। उसने दरवाजा खोला ही था कि इतने में उसे किसी के आने की आहट सुनाई दी। वह खम्भे की आड़ में छिप कर खड़ा हो गया। चौकीदार आ रहा था। वापस आने पर चौकीदार ने गैरेज का दरवाजा पूरा खुला देखा तो पहले तो चौंक गया फिर उसने सोचा मालिक किसी काम से आए होंगे। अब वह बड़बड़ाया, ''लापरवाही की भी हद है। भला दरवाजा इस तरह खुला छोड़ना चाहिए। कुछ हो जाता तो सारा दोष मेरे ऊपर आ जाता।''

उसने दरवाजा बंद करके ताला लगा दिया। चोर मजबूर सा छिपा खड़ा देखता रहा। कार में पड़ी आधी वसीयत भी उसके हाथ से निकल गई। उसके सारे परिश्रम पर पानी फिर गया। निराश होकर वह बगीचे के पेड़-पौधों की आड़ लेता हुआ बंगले से बाहर निकल गया।

''नीली जाओ वसीयत को ढूंढो, बिना इसके हम कहीं के नहीं रहेंगे। इन बदमाशों ने ही वह कहीं फेंक दी होगी,'' चाचा ने कहा।

किन्तु नीली चाचा की बात पर ध्यान न देकर खिड़की की तरफ आश्चर्य से देख रही थी, जिसके दोनों पल्ले बाहर की ओर खुले थे। वह सोच रही थी कि खिड़की तो उसने बंद कर दी थी, फिर यह खुली कैसे। उसी समय शेरू अंदर आया। उसके दांतों में कागजों का एक पुलिंदा था। उसे हाथ में लेते ही वह खुशी से चीख पड़ी, ''अरे यह तो वसीयत है।'' उसने उस पुलिंदे को पलट कर देखा तो गम्भीर हो गई और दुखी सी बोली, ''लेकिन यह तो उसका आधा टुकड़ा ही है।''

चाचा ने जल्दी से नीली के हाथ से कागज झपट लिया। शेरू सोच रहा था कि चाचा कागज पाकर उसे शाबाशी देंगे। उसकी पीठ थपथपाएंगे। किन्तु चाचा तो क्रोध से आंखें लाल किए उसे घूर कर देखने लगे। वह सहम कर नीली के पास खड़ा हो गया।

दया से उसकी तरफ देख कर नीली ने पूछा, ''तूने यह कागज कहां पाया? शेरू, चल दिखा मुझे वह जगह।'' वह बाहर निकलने के लिए बढ़ी, शेरू भी दरवाजे से निकलने को हुआ कि नीली रुक गई। उसने खिड़की से झांका। टूटे कांच के टुकड़े बाहर बिखरे पड़े थे।

''चाचा, जरूर कोई अंदर आया था और इसी खिड़की से कूद कर भाग गया है। मेरी बात मानो चाचा,'' नीली ने चाचा को समझाते हुए कहा।

किन्तु चाचा ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। वह सोच रहे थे कि नीली शेरू को निर्दोष साबित करना चाह रही है। हमेशा ही वह उसका पक्ष लेकर उसे बचाने की कोशिश करती है। नीली उस समय वहां न होती तो वह दोनों की अच्छी पिटाई करते।

नीली, शेरू और बिल्लू के साथ वसीयत ढूंढने बाहर निकल गई। जिस रास्ते से चोर बाहर निकला था, शेरू सूंघता-सूंघता उसी तरफ दौड़ रहा था किन्तु चोर भाग कर निकल चुका था। नीली भी बेकार में उसके पीछे दौड़ रही थी। उसने पूछा, ''तूने यह कागज कहां से पाया, यह बता न?''

शेरू चोर को न पाकर परेशान-सा गैरेज के पास आकर खड़ा हो गया। वहां ताला लटका था। दोनों की कुछ समझ में नहीं आया। उसने खिड़की से गैरेज के अंदर झांक कर देखा। वहां कुछ भी दिखाई नहीं दिया। लेकिन शेरू पंजे से बराबर दरवाजे को खरोंच रहा था, जिसका अर्थ नीली की समझ में नहीं आया। तभी चाचा ने आवाज लगाई, ''क्या कर रहे हो तुम लोग बाहर? वहां नहीं मिल रहा है तो यहां अंदर आकर ढूंढो।''

''चाचा, शेरू मुझे यहां लाया है किन्तु यहां तो ताला पड़ा है। फिर भी कोई बात है जरूर।''

''तुम पागल हो। उसकी हर बात में तुम्हें कोई जरूरी बात लगती है। अब अंदर आ जाओ ईश्वर के लिए।''

चाचा कमरे से बाहर आ गए थे। नीली और शेरू भी घर के अंदर आ गए। वहां बिल्लू कोने में खड़ा कूं-कूं कर रहा था। नीली ने सहम कर पूछा, ''तुमने क्या इसे मारा है चाचा?''

''हां,हां, मारा है। इन दोनों से मैं अब परेशान हो गया हूं। जल्दी ही इनसे छुटकारा पा लूंगा।''

''क्या मतलब? तुम्हारा इरादा क्या इन्हें किसी को देने का है?'' नीली ने आश्चर्य से पूछा.

चाचा ने कुछ दबी जुबान से कहा, ''हां मुझे यही करना पड़ेगा अब।''

नीली अब तन कर खड़ी हो गई। ''नहीं तुम यह कभी नहीं कर सकते। इन्हें मुझसे दूर करके तुम इन पर और मुझ पर अन्याय करोगे। चाचा! तुम क्या इतने कठोर हो सकते हो? मुझे पूरा यकीन है इस बेचारे बिल्लू ने वसीयत हरगिज नहीं फाड़ी है।''

''तब किसने फाड़ी है? मैंने? तुमने? मुझे इसका दूसरा टुकड़ा मिलना ही चाहिए। तब शायद मैं अपना इरादा बदल दूं। नहीं तो अच्छी तरह जान लो कि मैं इन्हें घर में नहीं रहने दूंगा,'' कहते हुए चाचा झल्लाते हुए ऊपर चले गए।

पूरे दिन वसीयत की तलाश में नीली और चाचा परेशान रहे। आखिर यह तय किया गया कि पार्टी में तो चलना ही है। थोड़ी देर के लिए तो चिंता से छुटकारा मिल जाएगा। मन बहल जाएगा। शाम को जब चाचा कार बाहर निकाल रहे थे, शेरू उत्सुकता से देख रहा था। वह जब-जब कार के नजदीक जाने की कोशिश करता, चाचा उसे घुड़क कर छड़ी से दूर हटा देते, "समझ में नहीं आता कि इन जानवरों को कार में बैठने में क्या मजा आता है।"

लेकिन शेरू नाक से सूं...सूं... करता हुआ बार-बार कार की तरफ बढ़ रहा था। आखिर उसने अपने अगले पैर कार के फुट बोर्ड पर जमा दिए और अंदर झांक कर सूंघने लगा। उसे पता लग गया कि चुराई हुई चीज अंदर है। वह चाचा को भी यह बताना चाहता था। इधर चाचा उसकी हरकतों से बेहद चिढ़ रहे थे। शेरू ने दीनता से उनकी तरफ देखा, लेकिन उन्होंने उसे समझने की कोशिश नहीं की। हाथ के झाड़न को, जिससे वह कार के दरवाजे को पोंछ रहे थे, कार के अंदर ही फेंक कर वह शेरू को गले के पट्टे से पकड़ कर घर के अंदर ले गए। कार में जहां वसीयत पड़ी थी ठीक उसी पर झाड़न जाकर गिरा और वह पूरी तरह ढक गई। शेरू एक बार फिर उधर देख कर जोर से भौंका, किन्तु चाचा की मजबूत पकड़ के कारण मजबूर था।

तभी नीली तैयार होकर बाहर निकली। चाचा ने गुस्से में कहा, "ले जाओ इस बदतमीज कुत्ते को, अंदर कर दो इसे।"

नीली ने उसे ले जाकर अंदर कर दिया और बाहर से दरवाजा बंद करके कार में आकर बैठ गई। बिल्लू मार खाकर पूरे दिन सहमा-सहमा सा था। वह चुपचाप सो गया किन्तु शेरू बेचैन सा खिड़की पर मुंह रख कर बाहर कार को जाते देखने लगा। आज का पूरा दिन उसका खराब बीता था। उसकी पीठ का घाव भी दर्द कर रहा था। उसके बड़े बालों के कारण किसी को भी घाव दिखाई ही नहीं दिया था।

चाचा और नीली को गए अभी ज्यादा देर नहीं हुई थी कि चाचा के कमरे में कुछ खटका हुआ। शेरू धीरे से उढ़के दरवाजों को धकेल कर कमरे में अंदर आकर खड़ा हो गया। सुबह वाला आदमी फिर वसीयत लेने आया था। खिड़की के टूटे कांच से उसने खिड़की खोल ली थी। घर के लोग चले गए हैं, यह देख कर वह इत्मीनान से अपना काम करने आया था। कुत्ते की आदत ऐसे समय भौंकने की होती है किन्तु शेरू समझदार था, वह भौंका नहीं। खिड़की के नीचे जाकर चुपचाप मुंह ऊपर करके खड़ा हो गया। चोर को कुछ मालूम नहीं हुआ। वह तो समझा कि हमेशा की तरह कुत्ते भी कार में गए होंगे। उसने खिड़की से कूदने के लिए पैर लटकाए ही थे कि शेरू ने उसकी टांग पकड़ कर खींच ली। चोर घबरा गया। शेरू ने गुस्से से पूरे दांत उसके पैर में गड़ा दिए थे। इस बार शेरू बहुत गुस्से में था। उस आदमी से वह सुबह का बदला लेना चाहता था। आदमी ने बचने के इरादे से खिड़की के पास रखी किताबों की बड़ी-सी रेक पकड़ ली। किन्तु शेरू के खींचने से वह आदमी तो नीचे आकर गिरा ही, वह रेक भी किताबों सहित उसके सिर के ऊपर आ गिरी। भारी रेक और ढेर-सी किताबें गिरने से उसके सिर पर जोर की चोट लगी और वह गिरते ही कराह कर बेहोश हो गया। शेरू ने एक-दो बार उसके पैर को पकड़ कर झकझोरा किन्तु उसे तो होश ही नहीं था। पैर से काफी खून भी निकल आया था। शेरू उसके खड़े होने का इंतजार करने लगा। उसने उसके पास जाकर सूंघा भी। वह परेशान था कि वह उठता क्यों नहीं। आदमी हिलता-डुलता तो शेरू उससे लड़ता भी, किन्तु इस सोए हुए आदमी के साथ उसे क्या करना चाहिए उस की समझ में कुछ नहीं

आ रहा था। चारों तरफ किताबें बिखरी पड़ी थीं। कुछ आदमी के ऊपर भी पड़ी थीं। तभी शेरू को नीली की याद आई। वह खुली खिड़की से कूद कर बाहर आ गया। वह कहां गई है, यह तो वह नहीं जानता था किन्तु जिस ओर धुंआ छोड़ती कार गई थी, वह उसी ओर दौड़ पड़ा।

जाड़े की शाम थी, अतः बड़ी जल्दी, देखते-देखते सूरज डूब गया और कुहरा छा गया। चाचा और नीली को चले अभी थोड़ी ही देर हुई थी और वे लोग थोड़ी दूर ही गए थे कि अंधेरा छा गया। चाचा कार तेज चला रहे थे जिससे पार्टी में समय से पहुंच जाएं। उन्हें समय का बहुत ध्यान रहता था। घर से चलने में भी देर हो गई थी।

''चाचा, हम लोग जरा धीरे चलें तो अच्छा होगा,'' नीली ने कहा। नीली को कार की तेज रफ्तार से हमेशा डर लगता था। इतने में सामने से एक कार आती दिखाई दी। उसकी हैडलाइट से चाचा की आंखें चौंधिया गईं। उन्होंने अपनी कार बगल में करने की कोशिश की। सड़क ऊबड़-खाबड़ और ढलवां थी जिससे सड़क से हट कर कार ढलान पर उतर गई और सामने वाली कार तेजी से आगे निकल गई। उसके जाने के बाद चाचा ने अपनी कार फिर सड़क पर लाने की कोशिश की। आगे-पीछे करने और धुंधले में दिखाई न देने के कारण कार का पिछला पहिया एक गड्ढे में फंस गया और धक्का लगने से नीली का सिर सामने बोर्ड से जा टकराया। उसके मुंह से चीख निकल गई। चाचा भी डर गए। उन्होंने तुरंत कार रोक दी। ''चोट तो नहीं लगी नीली?'' चाचा ने चिंता से पूछा।

नीली भी घबरा गई थी।'' मुझे तो नहीं लेकिन चाचा आपको तो कुछ नहीं हुआ?''

''नहीं बेटी, मुझे तो कुछ नहीं हुआ। मैं तो तुम्हारे लिए घबरा गया था। बाल-बाल बचे।'' सचमुच, उस ठंड में भी चाचा के माथे पर पसीना आ गया था। दोनों कार से बाहर निकल आए।

''अभी हम घर से बहुत दूर नहीं आए हैं। पैदल घर वापस जा सकते हैं। कार निकालने की कोशिश करना बेकार है। हां, यदि कोई कार इधर से निकले तो अभी भी पार्टी में पहुंच सकते हैं। थोड़ी देर रुक कर देख लेते हैं,'' उन्होंने नीली को तसल्ली देते हुए कहा और फिर प्यार से उसे थपथपाया और फिर कार के अंदर ही बैठ कर दोनों किसी कार के आने की प्रतीक्षा करने लगे। लेकिन जब कुछ देर तक कोई कार आती नहीं दिखाई दी, तब नीली बोली, ''अच्छा हो हम घर वापस चलें। इधर तो किसी कार के आने के लक्षण ही दिखाई नहीं देते, चाचा।''

जैसे ही वे कार से बाहर निकले तभी दूर से कुत्ते के भौंकने की आवाज आई।

दूसरे ही क्षण शेरू हांफता-हांफता वहां पहुंच गया।

चाचा ने कहा, ''उफ! फिर शेरू।''

नीली आश्चर्य से कार से बाहर निकल आई। शेरू उछल कर अंदर चला गया। बड़ी देर बाद उसे कार में जाने का मौका मिला था। सारे दिन वह इसी के लिए परेशान रहा था। उसने झपट कर झाड़न हटा कर वसीयत का कागज मुंह में उठा लिया। यह सब उसने इतनी जल्दी किया कि चाचा

और नीली न कुछ कर सके, न समझ सके। नीली जरूर मन ही मन शेरू के आने के कारण को समझने की कोशिश तो कर रही थी। उसके मुंह में कागज देख कर वह खुशी से चिल्ला पड़ी, ''चाचा, वसीयत।''

चाचा ने चौंक कर देखा। वह भी प्रसन्नता से चीखे, ''कमाल है। यह तो सचमुच वसीयत है। शेरू आज तो तूने हमें डूबने से बचा लिया।''

उन्होंने शेरू को प्यार करना चाहा किन्तु शेरू को तो अभी बहुत कुछ और करना था। वह कार से बाहर निकल कर घर की तरफ मुंह करके भौंकने लगा और उधर ही भागने लगा। बीच-बीच में रुक-रुक कर मुड़ कर पीछे देखने लगता और दोनों को अपने पीछे आने का इशारा करता।

''चाचा, शेरू हमें घर चलने का इशारा कर रहा है। जरूर कोई खास बात है,'' नीली ने कहा। ''चलो, चलो,'' चाचा ने कहा और फिर दोनों शेरू के पीछे-पीछे भागने लगे। अभी फाटक खोल कर वे अंदर घुसे ही थे कि शेरू खिड़की की तरफ उछल-उछल कर भौंकने लगा। दोनों ने देखा कि एक आदमी खिड़की से निकला और चारदीवारी पर चढ़ कर बाहर गली में कूद गया। शेरू ने भी उसका पीछा किया। दीवार पर चढ़ने की कोशिश की किन्तु वह बहुत ऊंची थी। चोर भाग चुका था। उसे पकड़ना अब सम्भव नहीं था। चाचा ने शेरू को वापस बुला लिया।

चाचा ने सिर हिलाते हुए कहा, ''समझ गया, अब सब समझ गया। तो यह मामला है। हमें बर्बाद करने की चाल थी किसी की। इस आदमी को वसीयत चुराने के लिए किसी ने हमारे घर भेजा था और मैं इन वफादार कुत्तों को दोषी ठहरा रहा था। शेरू आज तूने ही हमें बर्बाद होने से बचाया है। लाख-लाख धन्यवाद, हे भगवान! नीली आज तेरे इन शैतानों ने कमाल का काम कर दिया है। अब कोई चिंता की बात नहीं। मैं अभी फोन करके टैक्सी बुलाता हूं। हम पार्टी में जरूर जाएंगे और अपने प्यारे शेरू और बिल्लू को भी साथ ले जाएंगे। चलोगे न शेरू?''

अपना नाम सुन कर और चाचा को खुश देख कर शेरू तो चाचा पर उछलने लगा, पूंछ हिलाने लगा। चाचा ने भी उसका मुंह पकड़ कर खूब प्यार किया। शेरू को दिन भर की मेहनत का इनाम मिल गया था। नीली की आंखों में तो खुशी के आंसू छलक आए थे। वह बिल्लू को गोद में लिए प्यार कर रही थी।

टैक्सी से सब लोग पार्टी में पहुंचे। पार्टी में शेरू के कारनामें सुन कर सब उसकी प्रशंसा कर रहे थे और उसकी पीठ थपथपा रहे थे। सबने अपनी-अपनी प्लेट से उसे अच्छी-अच्छी चीजें खाने को दीं। उस दिन की पार्टी में शेरू खास मेहमान था और वह उस दिन का हीरो बन गया था।

धर्म का संगम

बस से उतर कर चंद्रा प्रसन्नता से भरी भाई के घर आई और दरवाजे में घुसते ही आवाज लगाई, ''भइया!''

भाई अंदर से निकलता हुआ बोला, ''अरे चंदा, आओ-आओ। यह क्या लाई हो?''

तब तक चंदा की भाभी भी आ गई। चंदा ने अपनी पीली पोटली में से नारियल और गुड़ की भेली निकाली और कहा, ''भैया, तुम्हारी भानजी की शादी तय हो गई है। तुम सब को भात न्यौतने आई हूं।''

हंस कर चंदा ने भेली आगे बढ़ाई किन्तु भाई ने उसे थामने के लिए अपना हाथ नहीं बढ़ाया। वह गम्भीर हो गया। भाभी भी दो कदम पीछे हट गई।

भाई ने कहा, ''बहन, अबकी साल हमारी खेती चौपट हो गई है, कुछ भी उपज नहीं हुई है। साल भर का खर्च चलाना और लगान भरना ही हमें भारी हो रहा है। मैं यह भेली नहीं ले पाऊंगा। तुम छोटे को दे आओ।''

चंदा आश्चर्य से ठगी-सी खड़ी रह गई। उसकी आंखों में आंसू डबडबा आए। भाई उसे इस प्रकार लौटा देगा यह उसने सपने में भी नहीं सोचा था। वह तो बड़े उत्साह और उमंग से भरी आई थी। उसके तीन भाई थे। सबसे छोटे की मृत्यु हो गई थी। तीनों के परिवार अलग-अलग रहते थे। सबकी खेती-बाड़ी थी। तीनों खाते-पीते खुशहाल थे। चंदा के यहां यह पहली शादी थी। उसने सोचा था, 'सब भाई मिल कर भात लाएंगे। तब मैं गा-बजा कर उनका अपने दरवाजे पर स्वागत करूंगी। मंडप के नीचे भाई मुझे तथा मेरे ससुराल वालों को कपड़े देंगे। अपनी भानजी के लिए भी कपड़े-गहने लाएंगे। मैं भाई-भावज का तिलक करूंगी। कितना अच्छा लगेगा। मेरी लड़की की शादी धूमधाम से होगी। कौन सी दो चार बहनें हैं। तीन भाइयों की अकेली मैं ही तो बहन हूं और यह उनकी पहली भानजी की शादी है।'

किंतु उसकी सब आशाओं पर पानी फिर गया। आंचल से आंसू पोंछती हुई वह वापस चली गई। रुकने का सवाल ही नहीं था। शुभ भेली भाई ने स्वीकार न करके उसका अपमान कर दिया था। किसी तरह धैर्य रख कर वह दूसरे भाई के यहां गई। तीनों भाइयों का परिवार एक ही गांव में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर रहता था।

दूसरे भाई के यहां भाभी ही सबसे पहले मिली। भेली देख कर उसकी भौंहों में बल पड़ गए। उसने भी भेली को हाथ नहीं लगाया। वह शुरू से ही अपनी नंद चंदा को नहीं चाहती थी। उसके

हाथ में भेली देख कर बोली, ''बीबीजी, हमारी लड़की भी जवान हो गई है। हमें उसकी भी शादी जल्दी करनी है। हमें माफ करो। हम यह भेली नहीं ले सकते।''

चंदा की रही-सही आशा भी खत्म हो गई। जब दो भाइयों के घर से लौटा दी गई, तब तीसरे के घर में जाकर ही क्या करेगी। वहां तो भाई भी नहीं है। वह रोती-रोती बस अड्डे पर वापस आ गई। दुख और अपमान से उसकी छाती फटी जा रही थी। कितनी खुश थी वह जब अपने गांव से चली थी, किन्तु अब क्या मुंह लेकर गांव वापस जाए? ससुराल वाले क्या कहेंगे? वह क्या कहेगी सबसे कि भाइयों ने भेली लौटा दी। उसकी सारी इज्जत धूल में मिल जाएगी। बिना भाइयों की मदद के शादी करना भी मुश्किल हो जाएगा। दरवाजे का कलश, लड़की की नथ और बिछुए मामा ही देता है। जब भांवर पड़ती हैं, तब लड़की मामा की दी हुई पीली साड़ी पहनती है। अब यह सब कौन करेगा? उसने सोचा था कि भाई किसान हैं, कुछ अनाज और कपड़े आदि भी लाएंगे। लेकिन अब तो कहीं से कोई सहारा नहीं दिखाई दे रहा था। क्या मुंह लेकर वह घर जाए?

बस अड्डे पर बैठी वह ये सब सोच-सोच कर रोए जा रही थी। बस आने में अभी देर थी। सुबह से उसने कुछ खाया-पिया भी नहीं था और अब तो उसकी भूख-प्यास सब खत्म हो गई थी।

उसके पास ही एक व्यक्ति खड़ा था जो मुसलमान लग रहा था। वह भी बस का इंतजार कर रहा था। चंदा को रोता देख कर उसे आश्चर्य हो रहा था किन्तु संकोच के कारण कुछ पूछने से हिचक रहा था। आखिर वह पूछ ही बैठा, '' बहन कहां जाना है?''

''लखनपुर जा रही हूं भैया,'' चंदा ने आंसू पोंछते हुए उत्तर दिया। ''अरे मुझे लखनपुर से दो गांव पहले सैयदपुर जाना है। तुम इतना रो क्यों रही हो? इतनी दुखी क्यों हो बहन?'' मुसलमान भाई ने सहानुभूति से पूछा तो चंदा और जोरों से रो पड़ी।

बहुत पूछने पर उसने सब बातें मुसलमान भाई को रोते-रोते बता दीं। ''मैं अब क्या मुंह ले कर घर जाऊं? भेली वापस देख कर मेरे ससुराल वाले और घर आए मेहमान क्या कहेंगे? मेरी बेटी को मामा का नेग कौन देगा? किसकी साडी पहन कर बेटी की भांवरें पड़ेंगी? कौन उसे नथ पहनाएगा? सारा गांव मुझ पर हंसेगा। मेरा मन करता है कि मैं कुएं में कूद पड़ूं।''

वह आदमी भी चंदा की बात सुन कर दुखी हो गया। थोड़ी देर वह कुछ सोचता रहा। फिर एकाएक चंदा के पास आकर उसके सामने घुटनों के बल बैठ गया और कहा, ''बहन मेरा नाम नजरखां है। मुझे ही अपना भाई मान लो और अपनी भेली मेरे हाथ में दे दो। आज से तुम मेरी बहन हो और मैं तुम्हारा भाई। मैं तुम्हारा भात लेकर आऊंगा। तुम्हारी इज्जत मेरी इज्जत होगी। चिंता छोड़ दो। रोना बंद करो। तुम्हारी हैसियत के मुताबिक ही भात लाऊंगा। अब अपनी भेली तुम मुझे सौंप दो।''

यह कह कर उसने अपने हाथ चंदा के सामने फैला दिए। चंदा आश्चर्य से उस उदार मुसलमान भाई का मुंह देखने लगी। उसे लगा ईश्वर ही उसका मान-सम्मान रखने नजरखां के रूप में आ खड़ा हुआ है। फिर भी वह भेली उसे थमाने में हिचक रही थी। नजरखां ने फिर कहा, ''यह भेली मुझे दो न बहन। मुझे अपने गांव जाकर भात लाने का इंतजाम करना है। तुम भी बेफिक्र होकर लड़की की शादी की तैयारी करो।''

नजरखां की विश्वास भरी बातें सुन कर चंदा ने अपनी भेली उस मुसलमान भाई के हाथ में थमा दी। अब उसकी आंखों में दुख के नहीं खुशी के आंसू चमक रहे थे। नजरखां की आंखों से भी प्रेम के आंसू छलक आए। उसने अपनी जेब से 11 रुपये निकाल कर चंदा को थमा दिए। यह भेली का नेग था। खाली हाथ वह बहन से कैसे भेली ले लेता।

गांव पहुंच कर वह घर न जाकर सीधे मस्जिद में गया। वहां उसने भेली रख दी और नमाज पढ़ी। जो और लोग नमाज पढ़ने आए थे उन्होंने आश्चर्य से भेली और नारियल को देखा।

पूछने पर नजरखां ने कहा, ''दोस्तो, आप लोग जो यह भेली देख रहे हैं यह मेरी एक हिन्दू बहन ने मुझे दी है। उसकी बेटी की चार दिन बाद शादी है, जिसके लिए मुझे आप सब की तरफ से भात लेकर जाना है और भाई-बहन के पाक रिश्ते की इज्जत रखनी है। ऐसी ही इज्जत एक बार बादशाह हुमायूं ने भी अपनी हिन्दू बहन की रखी थी। इस भेली को मस्जिद में रख कर, मैं मजहब और खुदा को गवाह बना कर कसम खाता हूं कि अपनी बहन की बेटी की शादी में मैं ऐसा शानदार भात ले जाऊंगा कि उसके ससुराल और गांव वाले हमेशा याद रखेंगे कि कोई मुसलमान भाई भात लाया था।''



नजरखां की बात सुन कर मस्जिद में मौजूद लोगों ने कहा, ''नजरखां तुम्हारी बहन हमारी भी बहन हुई। वह हर मुसलमान भाई की बहन हुई। हम सब तुम्हारे साथ हैं।''

दूसरे दिन लोगों ने नजरखां के घर हजारों रुपये इकट्ठे करके पहुंचा दिए। उधर चंदा भी खुशी से भरी अपने गांव पहुंची। उसने सबको बताया कि भात-न्यौत आने वाला है, लेकिन भेली एक मुसलमान भाई ने ली है यह किसी को नहीं बताया।

शादी के दिन बारात गांव में पहुंचने वाली थी। मंडप के नीचे भात की प्रतीक्षा में सब रिश्तेदार जमा थे, तभी बाजों की आवाज सुनाई दी। एक आदमी दौड़ा हुआ आया, ''भात वाले आ गए हैं।'' चंदा और साथ की औरतें खुशी से भरी बाहर आईं। चंदा आरती का थाल लिए भाई की अगवानी करने निकली। दरवाजे पर भात लाने वालों में हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। बड़ी-बड़ी परातों में हिन्दू स्त्रियां लड्डुओं से भरे थाल सिर पर लिए आ रही थीं। साथ ही कपड़ों के थाल और कलश की जोड़ी लिए भी स्त्रियां आ रही थीं। सबके आगे-आगे नजरखां गर्व से सिर उठाए चल रहे थे। भाई ने बहन को देखा और बहन ने भाई को। दोनों की आंखों में खुशी उमड़ पड़ी।

नजरखां ने शुद्ध चांदी के एक-एक रुपये से केवल रिश्तेदारों का ही नहीं, वहां खड़े मित्र-बंधुओं का भी टीका किया। बहन-बहनोई को 1625 रुपये टीके के नगद दिए। 25 साड़ियां बहन को भेंट कीं तथा दो कलश और 60 थाल दिए। भानजी के लिए सोने की नथ, कान के झुमके, गले का हार, चांदी की पायल और बिछुए दिए।

सारे गांव में ऐसा शानदार भात अब तक किसी ने नहीं देखा था। जिसने भी देखा और सुना, वाह, वाह, कर उठा।

उस दिन ऐसा मालूम हो रहा था कि मानो वह गांव हिन्दू और मुस्लिम धर्म की दो नदियों के मिलन का पवित्र संगम बन गया हो।

गुलमोहर

"**क्यों** रो रहा है बेटा?" सेठानी ने बच्चे के कंधे पर हाथ रख कर प्यार से पूछा। बच्चे ने आंसू भरी आंखों से, सिर उठा कर सेठानी की तरफ देखा और अपनी मैली कमीज से आंखें पोंछते-पोंछते वह सिसक पड़ा।

सेठ रतनलाल और उनकी पत्नी आशा देवी रोज सुबह घूमने जाते थे। अपनी कोठी से लगभग एक किलोमीटर दूर तक जाना और लौटना उनका नित्य का नियम बन गया था। आज वापस लौटने में कुछ देर हो गई थी। पार्क में दोनों सुस्ताने के लिए बैठ गए थे। जब घर वापस जाने के लिए उठ कर सड़क पर आए तब चाय की दुकान के सामने लगभग आठ-नौ वर्ष के एक बालक को रोते देख कर रुक गए। लड़के के मैले गालों पर आंसू की लकीरें बन गई थीं। आशा देवी दयावश उसकी ओर बढ़ गई। सेठानी की सहानुभूति से लड़के का मन और भर गया और वह सिर नीचा करके फफक कर रो पड़ा। सेठानी ने उसका मुंह पकड़ कर ऊपर उठाया। बच्चे के मुंह से रुलाई के कारण शब्द नहीं निकल रहे थे।

"किसका बेटा है? क्या नाम है तेरा? रो क्यों रहा है?" सेठानी ने कई प्रश्न एक साथ कर डाले।

लड़के ने बड़ी मुश्किल से अपनी रुलाई रोक कर धीरे से कहा—"नंदलाल"।

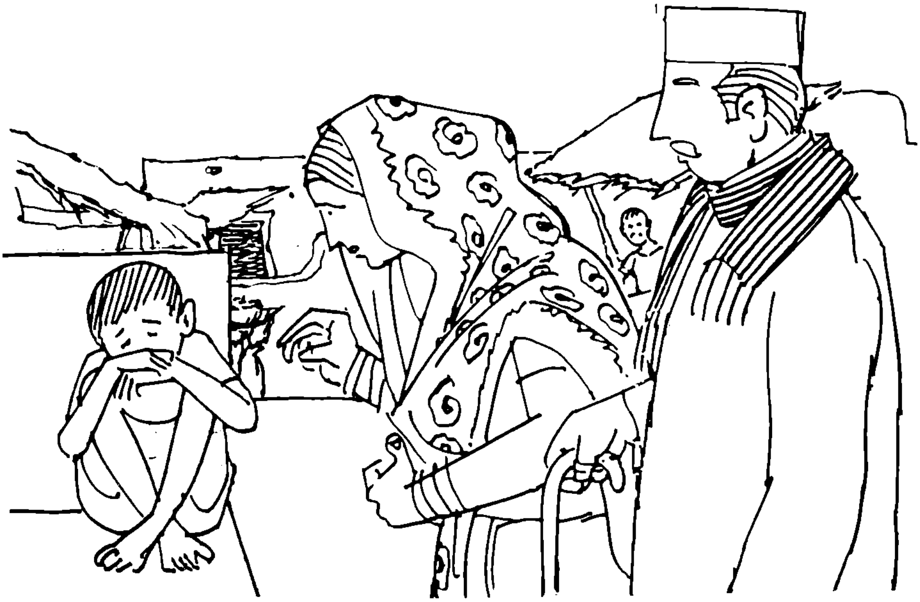
"कहां रहता है?" उसने थोड़ी दूर पर एक छप्पर की टूटी-सी कोठरी की ओर इशारा किया।

"क्या करते हैं तेरे माता-पिता?" इस प्रश्न पर लड़के ने दोनों हाथों से मुंह ढक लिया और फिर सिसक कर रोने लगा। सेठजी चुपचाप खड़े थे। सेठ और सेठानी को लड़के के पास खड़े देख कर चाय वाला दुकान से उतर कर उनके पास आया। लड़के की तरफ इशारा करके बोला—"भाग्य का मारा लड़का है बाबूजी। मां तो इसे पैदा करके ही मर गई थी, एक महीना हुआ बाप भी भगवान को प्यारा हो गया। दुनिया में अब इसका कोई नहीं है।"

लड़के की छोटी-सी दुखभरी कहानी सुन कर सेठानी की आंखें सहानुभूति से भर आईं। उन्होंने उसे अपने पास खींच लिया। उसका भोला चेहरा देख कर उस अनाथ बच्चे के लिए उनके दिल में दया उमड़ने लगी।

चाय वाले ने फिर कहा—"मांजी, इसे अपने पास रख लीजिए। बनिए का बेटा है। आपकी कुछ सेवा-टहल कर दिया करेगा। दोनों समय आपके यहां पेट-भर रोटी तो मिल जाएगी इसे। यहां तो बाप के मरने के बाद एक समय का खाना भी नसीब नहीं होता बेचारे को।"

दुकानदार की बात सुन कर सेठजी ने लड़के से पूछा—"तू हमारे पास रहेगा बेटे?" लड़के ने आंखें नीची करके स्वीकृति में सिर हिला दिया।



"तब चलो हमारे साथ।" कह कर सेठजी ने एक रिक्शे वाले को इशारे से रोका। आशा देवी ने नि:संकोच धूल से सने उस लड़के को अपनी गोद में बिठा लिया। रिक्शा चलने से पूर्व सेठ रतनलाल ने पूछा—"तुम्हारे घर में और कोई है क्या? किसी से कुछ कहना तो नहीं है?"

"मैं अकेला ही हूं घर में। सवेरे ताला लगा कर निकल जाता हूं घर से," लड़के ने जवाब दिया।

सेठानी ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"तब कोई बात नहीं।"

रिक्शा चल पड़ा। सेठ-सेठानी को नंदलाल के रूप में नौकर नहीं एक पुत्र मिल गया। और नंदलाल को केवल घर, खाना, कपड़ा आदि सुविधाएं ही नहीं बल्कि माता-पिता का प्यार भी मिल गया। इसके साथ-साथ नंदलाल को छोटे भाई के रूप में सेठजी का पुत्र रमेश भी मिल गया। इस तरह उसे सब कुछ ऐसे मिल गया जैसे किसी भिखारी को अचानक खजाना मिल गया हो।

घर पहुंच कर आशा देवी ने उसे नहला-धुला कर नए कपड़े पहनाए। सेठजी ने अपने रमेश के साथ उसके पढ़ने का भी प्रबंध करवा दिया। घर में वह सेठ रतनलाल के बड़े पुत्र की तरह रहने लगा। अकेले रमेश को भी एक बड़ा भाई तथा खेलने-खाने के लिए एक प्यारा साथी मिल गया। नंदलाल भी बड़ा बुद्धिमान था। नए वातावरण को उसने बड़ी जल्दी अपना लिया। वह सुशील, आज्ञाकारी और मीठे स्वभाव का समझदार बालक निकला। घर में सभी उससे प्रसन्न रहते। धीरे-धीरे दिन बीतते गए। सेठजी से नंदलाल ने व्यवसाय की भी बहुत-सी बातें सीख लीं। बनिए का पुत्र तो था ही। व्यवसायी बुद्धि भी थी उसमें।

नंदलाल अब जवान हो गया था। सेठजी ने पास के एक गांव में उसके लिए एक छोटी-सी कपड़े की दुकान खुलवा दी। समझदार, ईमानदार तो नंदलाल था ही, परिश्रमी भी बहुत था। उसे अभी तक अपने बचपन के कष्ट के दिन याद थे। उन्हें वह भुलाना भी नहीं चाहता था। वे दिन उसे आगे बढ़ने और धैर्य रखने की प्रेरणा देते थे। सेठ रतनलाल और आशा देवी की, अपने लिए उदारता और उनका पिता और माता जैसा प्यार भी वह एक क्षण को नहीं भुलाता था।

बड़ी लगन और परिश्रम से उसने गांव की दुकान चलाई, इसलिए उसकी दुकान खूब चलने लगी। ग्राहकों से उसका मीठा व्यवहार, परिचितों और मित्रों के दुख-सुख में उसकी भागीदारी ने नंदलाल को बहुत शीघ्र गांव में सबका प्यारा बना दिया। जिस दिन, नंदलाल ने पहली बार दुकान का लाभ लाकर अपने धर्म के माता-पिता को दिया तो प्रसन्नता से उनका हृदय भर आया। उन्हें लगा कि उनके लगाए हुए पौधे ने जमीन में जड़ें जमा ली हैं। अब वह लहलहाने लगा है। उनका पौधा लगाना और उसको इतने दिन तक सींचना और देखभाल करना सफल और सार्थक हो गया है। उन्होंने संतोष की सांस ली।

सेठजी ने उसे उसके रुपये लौटाते हुए प्यार से कहा—"बेटे नंदलाल, ये रुपये तुम्हारी कमाई के हैं, इन्हें अपने पास ही रखो। इनसे अपनी दुकान को बढ़ाओ और भविष्य के लिए कुछ धन संचित करते जाओ।"

नंदलाल रो पड़ा—"पिताजी क्या ये रुपये मेरे हैं? ये तो आप ही के हैं और आपके चरणों में चढ़ा रहा हूं, जैसे भगवान के फूल भगवान को चढ़ाए जाते हैं। आपने मुझे हर तरह से योग्य बना दिया है। पैरों पर खड़े होने की शक्ति भी दी है। दुकान के सहारे मैं आगे बढ़ता जाऊंगा। लोग जिस फल का वृक्ष लगाते हैं क्या उसका फल नहीं खाते?" उसकी बातें सुन कर सेठ और सेठानी ने उसकी भेंट रख ली।

देखते ही देखते गांव में वह एक सम्पन्न व्यक्ति माना जाने लगा। लोगों में उसका मान और सम्मान होने लगा। गांव में उसने अपना मकान भी बनवा लिया था। कल का सड़क पर खड़ा रोता हुआ अनाथ नंदलाल आज एक इज्जतदार सम्भ्रांत व्यक्ति माना जाने लगा।

कुछ ही दिनों बाद सेठजी ने नंदलाल का अपने ही रिश्तेदार की सुशील कन्या से विवाह भी कर दिया। बहू को उन्होंने अपनी ओर से अच्छे वस्त्राभूषण आदि दिए। शादी भी धूमधाम से की। जिसने देखा उसी ने सेठजी की उदारता की सराहना की। कुछ दिनों में बहू को लेकर नंदलाल गांव आ गया। इस तरह शहर में सेठ और सेठानी उसकी तरफ से निश्चिंत हो गए।

जिस प्रकार किसी के जीवन में हमेशा रात नहीं रहती, उसी प्रकार दिन भी हमेशा नहीं रहता। सेठजी के जीवन में भी अचानक अंधेरा घिर आया, जिसके लिए कोई तैयार नहीं था। दिल का दौरा पड़ने से एक दिन सेठजी की हृदयगति रुक गई। पूरे परिवार को बिलखता छोड़ कर सेठ रतनलाल संसार छोड़ कर चल बसे। सेठानी पर तो जैसे बिजली टूट पड़ी। पुत्र रमेश अभी इस योग्य नहीं हुआ था कि पिता का व्यवसाय सम्भाल सके। सेठजी ने उसे अभी इसकी शिक्षा भी नहीं दी थी। सोचते थे इतनी जल्दी भी क्या है। धीरे-धीरे सब समझ जाएगा। किसको मालूम था कि एक

दिन अचानक रमेश इस प्रकार अनाथ हो जाएगा और उसके जीवन की नाव मंझधार में आ पड़ेगी। अभी पूरी तरह से सेठजी के जाने का दुख परिवार के लोग भूल भी नहीं पाए थे कि एक दिन गोदाम में आग लग गई। सेठजी का रुई का व्यवसाय था। देखते-देखते ही लाखों का माल जल कर स्वाह हो गया। पिता की छाया उठ जाने से रमेश वैसे ही अपने को अनाथ अनुभव कर रहा था, अब तो कंगाल भी हो गया। व्यापार में देना-लेना लगा ही रहता है। सेठजी के भी लाखों रुपये लोगों के पास थे और लोगों को भी सेठजी से हजारों रुपये वसूलने थे। कौन ये सब हिसाब करता? देने वाला तो कोई ईमानदारी से देने नहीं आया किन्तु लेने वाले रोज सेठजी के घर चक्कर काटने लगे। बेचारा रमेश व्यापार का कुछ भी हिसाब-किताब नहीं जानता था। बच्चा समझ कर लोग उसे दबाने की चेष्टा करते थे। सेठानी आशा देवी दुख और चिन्ता से टूट गई और इस प्रकार उन्होंने चारपाई पकड़ ली। यह सब कुछ ही महीनों में घट गया। जिस हवेली में दिन रात नौकर-चाकर तथा आने-जाने वालों की चहल-पहल रहती थी, अब वह वीरान सी हो गई थी। रमेश ने घर से बाहर निकलना बंद कर दिया। तकाजे वालों का आना-जाना लगा रहा।

जिन दिनों कानपुर में सेठजी के स्वर्गवास के कारण रमेश और आशा देवी पर विपत्ति का पहाड़ टूटा था उन दिनों नंदलाल अपने परिवार तथा अपनी सास को लेकर बद्रीनाथ की यात्रा पर गया हुआ था। उस समय बद्रीनाथ की यात्रा इतनी आसान नहीं थी। इसके लिए काफी पैदल चलना पड़ता था। तीर्थयात्रा में महीनों लग जाते थे। नंदलाल को सेठजी की मृत्यु और घर की दुर्दशा का कुछ भी पता नहीं लगा। यात्रा से महीनों बाद लौट कर वह अपने गांव आया। जब उसे सेठजी के घर की खबरें मिलीं तो वह पछाड़ खाकर गिर पड़ा। वह तुरंत कानपुर के लिए रवाना हो गया।

सेठानी बीमारी के कारण सूख कर कांटा हो गई थी। रमेश के मुख की चमक भी गायब हो गई थी। हवेली की रौनक तो लगभग समाप्त ही हो गई थी। नंदलाल आते ही आशा देवी को पकड़ कर बच्चों की तरह बिलखने लगा। उसके मुंह से बोल ही नहीं फूट रहे थे। आशा देवी के भी धैर्य का बांध टूट गया। नंदलाल को छाती से लगा कर वह बड़ी देर तक रोती रही। बड़ी मुश्किल से नंदलाल की बहू ने दोनों को अलग किया।

"मां मैं कितना अभागा हूं। जन्म से ही अभागा हूं। छोटेपन में ही मां-बाप को खो दिया था, पर सेठजी जैसे दयालु पिता को पाकर सब दुख भूल गया था किन्तु अब वह भी मुझे छोड़ कर चले गए? मैं उनकी कुछ भी सेवा नहीं कर सका। अंतिम समय उनके दर्शन भी नहीं कर सका। और मां तुम्हारी क्या हालत हो गई! दो-दो बेटों के रहते तुम्हारी यह दशा, धिक्कार है मुझे!" उसने रोते हुए कहा था।

नंदलाल की सिसकियां रुक ही नहीं रही थीं। दुख उसके हृदय में जैसे समा ही नहीं रहा था। कभी रमेश को अपने से चिपटा लेता तो कभी उसे गोद में समेट लेता। उसकी हालत देख कर छाती फटी जा रही थी। आखिर आशा देवी ने ही उसे समझा कर चुप कराया।

कुछ शांत होकर नंदलाल ने घर का सारा हाल पूछा। फिर वह उठा और अपना संदूक खोल कर एक थैली निकाली। थैली में से नोटों की गड्डियां निकाल कर उसने आशा देवी के चरणों पर बिखेरते हुए कहा— "मां यह सब आपका है। आपके पुण्य का ही फल है कि मैं आज इस योग्य बन

सका हूं। अब मुझे भी अपनी कुछ सेवा करने का अवसर दीजिए। जिसका जो कुछ लेना-देना हो, आज, अभी चुका दें। कल से कोई तकाजा करने वाला हमारे दरवाजे पर नहीं दिखाई देना चाहिए। जो कुछ रुपया कम होगा, मैं शीघ्र ही वह भी चुका दूंगा। मेरे जैसे जवान बेटे के रहते मां यदि कर्जदार हो तो बेटे के लिए इससे शर्मनाक और कोई बात नहीं है।"

नंदलाल की आदर और प्यार भरी बातें सुन कर आशा देवी की आंखों से खुशी के आंसू बहने लगे। उसके मुंह से शब्द नहीं निकल पा रहे थे। रमेश को तो लग रहा था जैसे उसके पिता ही लौट आए हैं और अब वह बेसहारा या अनाथ नहीं है तथा उसे अब चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार सेठजी के व्यवसाय की नाव जो मंझधार में फंस कर डूबने वाली थी, उसे नंदलाल ने किनारे पर लगा दिया। सेठ और सेठानी के पुण्य का गुलमोहर फूलों से लदा लहलहा रहा था।

सांप की कुंडली

आलोक एक सीधा-सरल लड़का था। वह 12 वर्ष का भी पूरा नहीं हुआ था। माता-पिता का अकेला पुत्र होने के कारण, घर में उसे लाड़-प्यार भी बहुत मिलता था। वह प्रतिदिन नियम से स्कूल जाता। उसके माता-पिता उसे इधर-उधर के बेकार लड़कों की संगत से बचाते थे। लेकिन स्कूल में तो वह सभी तरह के लड़कों को देखता था। वह देखता कि कुछ लड़के बड़ी शान से घूमते रहते। उन्हें स्कूल में किसी का डर नहीं रहता। अध्यापक का भी नहीं। वे कपड़े भी कीमती तथा रंग-बिरंगे पहन कर आते और सबसे बड़ी बात है कि ये लोग अक्सर खोमचे वाले से चाट और मिठाई लेकर खाते रहते।

आलोक सोचता—'मुझे तो मां रोज-रोज पैसे नहीं देती। देती भी है तो इतने नहीं कि खुद चाट और मिठाई खाऊं और मित्रों को भी खिलाऊं। मुझे अपने शिक्षकों से कितना डर लगता है। मैं अपने से बड़ी कक्षा के लड़कों से भी दबता हूं। क्या मैं डरपोक हूं? क्या ये लोग बहादुर हैं?'



आलोक को अभी अच्छे और बुरे का भेदभाव ही नहीं मालूम था। उसकी उत्सुकता धीरे-धीरे बढ़ती जाती। अब कभी-कभी वह उन लड़कों के आस-पास घूमने लगा जिनके बारे में वह

अक्सर सोचा करता था। वह उनकी बातचीत सुनने की कोशिश करता। धीरे-धीरे हिम्मत करके वह उनके पास खड़ा भी हो जाता और अब तो आलोक का उन लड़कों के साथ रहने का मन भी करने लगा। उसके अंदर की हिचक खत्म हो गई। स्कूल में शम्भू नाम का एक ऐसा लड़का था जो स्वयं तो दिन भर आवारा घूमता ही था, साथ ही दूसरे सीधे-सादे लड़कों को भी अपने साथ मिला कर, उन्हें गलत रास्ते पर लाने की कोशिश करता था। घर से तो वह स्कूल जाने के नाम से नियम से निकलता किन्तु उसे पढ़ने-लिखने से कोई मतलब नहीं था। उसकी अपने जैसे आवारा साथियों की एक टोली थी। यदि कोई लड़का उसका कहना नहीं मानता था या उससे किसी बात पर झगड़ा कर लेता तो शम्भू अपने साथियों से उसे पिटवा भी देता। भला ऐसे लड़के से कौन नहीं डरेगा? कौन उसे छेड़ेगा? कौन उससे झगड़ा मोल लेगा? स्कूल के अध्यापक भी उसे कुछ नहीं कहते। चाहे वह स्कूल में आए या न आए। कक्षा में बैठे या न बैठे।

शम्भू अपने से छोटे बच्चों को चोरी करना भी सिखाता। उनके घर से चीजें और पैसे चोरी से मंगवाता। उसके साथ रह कर हर लड़का गंदी आदतें सीख ही लेता। जैसे कि कोयले की कोठरी में यदि कोई साफ कपड़े पहन कर जाए तब कितनी ही सावधानी से अपने वस्त्र या हाथ-पैर बचाए किन्तु बिना गंदे हुए, साफ-सुथरा वापस नहीं आ सकता। हाथ-पैर और कपड़ों में कालिख लगे बिना नहीं रह सकती। शम्भू भी कोयले की कोठरी था।

दुर्भाग्य से आलोक भी शम्भू की संगत में पड़ गया। आलोक के पिता एक क्लर्क थे। साधारण खाता-पीता परिवार था उसका। वह अपने पुत्र का बराबर ध्यान रखते कि कहीं वह गलत रास्ते पर न जाए किंतु स्कूल में कैसे देख सकते थे कि उनका पुत्र क्या कर रहा है या किसके साथ घूमता-फिरता है? परीक्षा में अच्छे अंकों से पास हो जाता था फिर चिन्ता करने की भी कोई खास बात नहीं थी।

आलोक के घर से शम्भू दूर भी नहीं रहता था। उसने देखा कि आलोक उसे अक्सर प्रशंसा और उत्सुकता से देखता रहता। बस वह समझ गया कि मछली जाल में फंसने ही वाली है। वह आलोक को देख कर मुस्करा देता। धीरे-धीरे बातचीत होने लगी।

वह कहता, "अरे रट्टू तोते, कभी-कभी समय निकाल कर हमारे साथ भी आ जाया कर। ले टाफी खा ले।"

आलोक शरमा कर टाफी ले लेता। शम्भू के साथ चलने में उसे गौरव का अनुभव होता। वह देखता कि उसकी जेब हमेशा टाफियां और लेमन ड्राप्स से भरी रहती है। रोज नए-नए तरह के पैन उसकी कमीज की जेब में लगे रहते। उसने भी अपने पिताजी से कहा कि उसे एक और अच्छा पैन ला दें तो उन्होंने उत्तर दिया—"तुम्हारे पास एक तो है, उसे सम्भाल कर रखो। क्या एक और अच्छा पैन मिल जाएगा तो तुम और अच्छा लिखने लगोगे? यदि तुम्हारा दिमाग अच्छा होगा, पढ़ाई अच्छी करोगे तो मामूली कलम से भी अच्छा लिख लोगे, नहीं तो कीमती कलम रहते हुए भी फेल हो सकते हो।" पहले पिताजी की ये बातें आलोक को संतुष्ट कर देती थीं किन्तु अब वह मन मसोस कर रह जाता। उसे नहीं मालूम था कि शम्भू और उसके मित्र अपने घर से माता-पिता की चीजें और रुपये चुरा कर अपनी शान-शौकत बढ़ाते हैं। लोगों में अपनी धाक जमाते हैं। स्कूल से छूटते ही अब वह

अपने ही घर में

"राकेश कुछ और लो न यार! तुमने तो कुछ खाया ही नहीं। क्या अम्मी के हाथ की सेवईं तुम्हें पसंद नहीं आई?" नईम ने डोंगा राकेश की ओर बढ़ाते हुए कहा।

"कितना खिलाओगे नईम? क्या आज यहीं पर मेरा बिस्तर बिछाना है? देख रहे हो न कि मेरा पेट फूल कर फुटबाल बन गया है।"

गोल-मटोल स्वस्थ राकेश ने कुरता उठा कर अपना पेट दिखाना चाहा तो नईम के अब्बा ने उसका हाथ रोक कर, पीठ थपथपा दी और हंस कर बोले—"बस, बस, बेटे! नजर लग जाएगी तुम्हारे पेट को। इसे ढक कर ही रखो। अल्लाह तुम्हारी सेहत को बरकत दे।"

नईम के घर राकेश ईद की मुबारकबाद देने आया था। ईद को गुजरे तो तीन दिन बीत चुके थे किन्तु राकेश शहर से बाहर था। आज सुबह ही बाहर से घर लौटा था। उसका घर भी राकेश के घर से दूर था, इसीलिए तीन बजे ही वह नईम से ईद मिलने चला आया जिससे शाम होते ही घर लौट जाए। राकेश अक्सर नईम के घर आता रहता था। दोनों एक ही स्कूल में पढ़ते थे और अच्छे दोस्त थे। नईम के माता-पिता भी राकेश को बहुत प्यार करते थे। बिलकुल अपने लड़के की तरह मानते थे वे उसे। दोनों दोस्तों के पिता भी एक ही दफ्तर में अधिकारी के पद पर काम करते थे। नईम के अब्बा यद्यपि पुराने विचारों के कट्टर मुसलमान थे लेकिन उसके घर में राकेश से कोई परदा नहीं करता था। नईम की बहन भी राकेश को 'भाईजान' कह कर बुलाती। राकेश भी उसे अपनी सगी बहिन की तरह ही मानता। कभी उसे 'बिल्ली' कह कर चिढ़ाता तो कभी 'छिपकली'। वह भी उसे मोटू कह कर उसका मजाक उड़ाती।

कभी-कभी राकेश सचमुच चिढ़ जाता और कहता—"ए बिल्ली सुन ले कान खोल कर, यदि मुझे मोटू कहा तो मैं तेरी शादी बहुत दूर किसी मोटू मियां से करवा दूंगा। इतनी दूर कि वहां तुझे न मैं और न नईम, कोई बुलाने भी नहीं जाएगा।"

नईम की बहन फहमीदा तब चिढ़ कर अपनी अम्मी से शिकायत कर देती। अम्मी कहती-"पगली क्यों बुरा मानती है इस शैतान की बात का। हम लोग इसके लिए इसी की तरह एक गोल-मटोल मारवाड़ी सेठ की लड़की ढूंढ कर लाएंगे। अच्छी जोड़ी रहेगी न?"

सब लोग खिलखिला पड़ते। फहमीदा ताली पीटने लगती।

उस दिन खाते और बातें करते काफी देर हो गई। छः बजने को आए। शाम घिरने लगी। राकेश ने कहा—"नईम अब घर जाना चाहिए। इतने दिनों बाद मैं बाहर से आया हूं अभी तो मां के पास कुछ देर बैठ भी नहीं पाया।"

दोनों घर से बाहर निकले। लेकिन यह क्या? सड़क पर कुछ मुसलमान लाठी-हथियार लहराते, शोर मचाते चले आ रहे थे। दंगा हो गया था। मुसलमानी मुहल्ला था। नईम ने खतरा भांप लिया। अभी पूरा किवाड़ खोल कर डयोढ़ी नहीं लांघी थी कि राकेश का हाथ पकड़ कर नईम ने उसे अपनी आड़ में करके वापस कमरे में धकेल दिया। राकेश कमरे में फर्श पर जा गिरा। दो मिनट नईम ने अपनी शक्ल बाहर वालों को दिखा कर खुद भी अंदर घुस कर किवाड़ लगा लिए। सड़क पर घूम रहे गुंडों की नजर उस पर पड़ी। मुसलमान भाई है, सोच कर आगे बढ़ गए। नईम ने राकेश को छिपाने में इतनी जल्दी की थी कि किसी की नजर उस पर नहीं पड़ी, नहीं तो भगवान जाने क्या होता।

खतरे का अंदाज लगा कर नईम का दिल बुरी तरह धड़क रहा था। अंदर आकर उसने कहा—''चोट तो नहीं लगी राकेश?''

लेकिन वह तो भौंचक्का-सा उसका मुंह देख रहा था। यह सब इतनी जल्दी हुआ था कि सीधे-साधे राकेश को कुछ समझ में नहीं आया। बात यह थी कि सब अंदर किवाड़ बंद किए बैठे थे। जब राकेश जाने लगा तो नईम ने ही आगे बढ़ कर किवाड़ की सिटकनी खोली थी। वही पहले बाहर निकला था। राकेश को अम्मीजान से आदाब करने में थोड़ा समय लग गया था इसलिए वह दो कदम पीछे ही था। यह सोच कर कि कहीं किसी मुसलमान की उस पर नजर न पड़ जाए, नईम ने उसे जोर से वापस कमरे में धकेल दिया था। नईम की अम्मी ने उसे उठा कर कुर्सी पर बिठाया। दो-चार मिनट तो किसी को कुछ अंदाज ही नहीं लगा कि क्या हुआ। किन्तु अब सब शीशे की तरह साफ था। बाहर मारो-काटो का शोर हो रहा था। हिन्दू मुसलमानों का झगड़ा शुरू हो गया था।

खिड़की-दरवाजे सब बंद करके पूरा घर चुपचाप एक कमरे में आ बैठा। नईम घबरा रहा था राकेश के लिए। यदि किसी को मालूम हो गया कि एक हिन्दू लड़का मुसलमान के घर में बैठा है तो गजब हो जाएगा। मजहब और धर्म के अंधे कुछ लोग दंगों के समय अपना-पराया सब भूल जाते हैं। जिंदगी भर की दोस्ती ताक पर रख कर ये एक-दूसरे की पीठ में छुरा भोंकने में जरा भी नहीं हिचकते।

राकेश का भी घबराहट से बुरा हाल था। उसकी मां क्या सोच रही होगी? उसके मुहल्ले में भी क्या दंगा हो गया होगा? तब तो मां और पिताजी राकेश के लिए छटपटा रहे होंगे। मां और दादी जरूर बिलख-बिलख कर रो रही होंगी। कहीं पिताजी उसे ढूंढने न निकल पड़ें, तब क्या होगा?

उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। कोई किसी से बात नहीं कर रहा था। कमरे में अजीब-सा सन्नाटा छाया था। रात के आठ बज गए। अब शोर कुछ कम हो चला था। बाहर पुलिस का सायरन सुनाई देने लगा। पुलिस की जीपें दौड़ रही थीं। स्थिति शायद काबू में हो गई थी। कर्फ्यू लगा दिया गया था। घर में यदि कोई नहीं घबराया था तो वह नईम के अब्बा थे। वह दूसरे कमरे में फोन पर बैठे बराबर कोतवाली से सम्बंध बनाए हुए थे। रात के लगभग 11 बजे जब यह पता लग गया कि अब शहर की हालत ठीक है, झगड़ा बंद हो गया है तो वह इतमीनान से उठे। खतरा टल चुका था।

उन्होंने कोतवाली फोन करके अपने दोस्त दरोगा को जो हिन्दू ही था राकेश के बारे में बताया—''दरोगा साहब, राकेश मेरे घर में है। खतरे से बाहर है। मेरे बेटे की तरह मेरे पास

हिफाजत से है, किन्तु उसके मां-बाप का क्या हाल होगा इसका अंदाज एक बेटे का बाप होने के नाते मैं लगा सकता हूं, इसलिए या तो आप यहां आकर उसे अपने साथ लेकर उसके घर पहुंचा दें या उसके घर किसी तरह ख़बर कर दें कि उनका बेटा मेरे पास है। उसका बाल भी बांका नहीं होगा।"

"मेरे सच्चे मुसलमान भाई, मैं आपको यहीं से प्रणाम करता हूं। आप एक अच्छे इन्सान हैं। जब तक आप जैसे हिन्दू या मुसलमान भारत में हैं, कोई हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मैं अभी एक आदमी को राकेश के घर भेजता हूं। उसके माता-पिता की जैसी इच्छा होगी, आप को बताऊंगा," दरोगा ने कहा।

फोन रख कर मुस्कुराते हुए नईम के अब्बा अब उस कमरे में आए जहां सब लोग डरे-सहमे से बैठे थे। उन लोगों को कुछ पता नहीं था कि फोन पर किससे और क्या बात हो रही थी।

"अरे क्या मनहूसियत छाई है यहां? बेगम, जरा गरम-गरम चाय तो बनाओ सब लोगों के लिए। कितनी देर से कुछ खाया-पिया नहीं है हम लोगों ने," नईम के अब्बा ने सबके गम्भीर चेहरे देखते हुए कहा।

ताज्जुब से उनकी ओर देखती तथा हिचकती हुई नईम की अम्मी चुपचाप चाय बनाने के लिए उठ कर रसोईघर में चली गई। नईम के अब्बा ने एक रहस्यभरी दृष्टि से राकेश को देखा। राकेश कुछ समझ नहीं पाया कि वह क्यों इतनी गम्भीरता से उसे देख रहे हैं। वह सोच रहा था, 'हे भगवान! क्या इनके मन में भी हिन्दू और मुसलमान का फर्क आ गया है? इतनी देर तक ये कहां थे? चाय बनाने के बहाने ही क्या इन्होंने अम्मी को यहां से हटा दिया है? सुनते हैं मजहबी दंगों में कोई किसी का नहीं होता। पुराने से पुराना रिश्ता ये लोग ताक पर रख देते हैं। मैं कहां आ फंसा? हे राम!'

नईम के अब्बा आगे बढ़ कर उसके पास आकर खड़े हो गए। वह मुस्कुराए और उसकी पीठ को थपथपाते हुए बोले—"कहो बेटे राकेश क्या बात है? एक मुसलमानी मुहल्ले में एक मुसलमान के घर में बैठे हो, यही सोच कर घबरा रहे हो न कि कहीं कुछ हो न जाए। अपनी जान का डर लग रहा है तुम्हें?"

राकेश घबरा कर उठ खड़ा हुआ। जैसे स्वप्न देखते-देखते चौंक पड़ा हो। उसने नईम के अब्बा के मुंह की ओर देखा, जैसे उसने न ही कुछ सुना और न ही कुछ समझा हो। उसकी हालत देख कर अब्बा को हंसी भी आ रह थी और दया भी। उन्होंने उसे पकड़ कर छाती से लगा लिया। "पगले! अपने ही घर में, अपनों के बीच बैठ कर भी कोई तेरी तरह घबराता है? क्या तू अभी तक हम लोगों को नहीं पहचान पाया? लाख हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा या दंगा हो लेकिन अपने घर में हम तुझ पर आंच नहीं आने दे सकते। जब तक हम में से कोई भी जिन्दा है, तुझे कोई खतरा नहीं हो सकता राकेश बेटे।"

राकेश ने दोनों हाथों से नईम के अब्बा को लपेट लिया था। घबराहट और भय की हालत में अब्बा के प्यार के शब्दों ने उसे सचमुच रुला दिया। इतने में फोन की घंटी बजी। अब्बा ने दौड़ कर फोन उठाया। दरोगा साहब बोल रहे थे—"भाईजान, जरा राकेश को बुलाइए अपने पिताजी से बात कर ले। मैं उन्हीं के मुहल्ले से बोल रहा हूं।"

राकेश ने फोन पकड़ा, उसके पिता बोल रहे थे—"बेटे राकेश, ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद दो कि आज इस खतरे के समय तुम नईम के घर में हो।"

राकेश ने पूछा—"पिताजी क्या मैं घर आ जाऊं?"

"अरे नहीं, पगले! जितना सुरक्षित तू भाईजान के घर में है, उतना तो अपने घर में भी नहीं रह सकता। समझ कि तू अपने पिता के ही घर में है," कह कर उन्होंने फोन रख दिया।



राकेश ने सिर उठा कर देखा। दरवाजे पर अम्मी चाय की ट्रे लिए खड़ी मुस्कुरा रही थीं। सबका डर और घबराहट समाप्त हो चुकी थी। फहमीदा ने कहा—"क्यों भाई नईम, ये मोटे लोग इतने डरपोक क्यों होते हैं?"

राकेश घूंसा तान कर मारने दौड़ा—"ठहर बिल्ली—कुछ ज्यादा ही--"

फहमीदा जीभ निकाल कर उसे चिढ़ाती हुई दूसरे कमरे में भाग गई।

करोड़पति भिखारी

यशमणि सुंदर, सुशील और शिष्ट युवक था। वह स्वस्थ, लम्बा और गोरा तो था ही, साथ ही उसके चौड़े सुडौल माथे और काले घुंघराले बालों ने उसके रूप को इतना आकर्षक बना दिया था कि लोग उसे देखते ही आकर्षित हो जाते थे। पूरे नगर में उस जैसा सुंदर युवक नहीं था। उसकी बोली में भी बड़ी मिठास थी। वह कभी किसी से कठोर शब्द नहीं कहता था। उसका हृदय ऐसा उदार और दयालु था कि बूढ़े और गरीब उसे आशीर्वाद देते नहीं थकते थे। वह सबकी सहायता करने के लिए तत्पर रहता। बच्चे भी उसे इतना पसंद करते थे कि वे प्रायः उसके साथ बात करने और खेलने के लिए अवसर ढूंढते थे।

किन्तु यशमणि कोई बहुत बड़ा विद्वान नहीं था और न ही इसके लिए उसे पश्चाताप था। वह बड़ा प्रसन्नचित्त स्वभाव का युवक था। लेकिन उसमें एक कमी थी कि वह किसी काम को देर तक लग कर करने मे कतराता था। अधिक परिश्रम करने से वह बड़ी जल्दी ऊब जाता था, इसलिए सुंदर सुशील होने पर भी उसे एक अकर्मण्य और बेकार युवक कहा जा सकता था। वास्तव में उसके स्वभाव की इस कमी का कारण यह था कि उसके ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं थी। माता-पिता दोनों का भी स्वर्गवास हो चुका था। फिजूलखर्ची की कोई खराब आदत भी नहीं थी उसमें। वह स्वभाव का संतोषी था। उसके पास खूब धन-संपत्ति होनी चाहिए इसकी भी उसे कभी इच्छा नहीं हुई। जब उसके पिता का स्वर्गवास हुआ था तब सम्पत्ति के नाम पर वह, एक अच्छा बड़ा सुसज्जित बगीचे वाला घर, कुछ पुस्तकें तथा पुरखों की एक बंदूक छोड़ गए थे। यशमणि ने पुस्तकें अलमारी में बंद कर दीं। पढ़ने-लिखने का उसे विशेष शौक था ही नहीं। बंदूक उसने एक खूंटी से टांग दी। शिकार खेलने से उसे चिढ़ थी। वह सोचता था पशु और पक्षियों से प्यार किया जाता है उन्हें मारा नहीं जाता है।

यशमणि की एक धनी बुआ थी जो विधवा थी तथा उसकी कोई संतान भी नहीं थी। वह हर माह उसे नियम से दो सौ रुपए भेजती थी। यशमणि संतोष के साथ उतने रुपयों में ही अपना गुजारा करता और प्रसन्न रहता था। उसके मुहल्ले में ही कुछ दूरी पर एक धनी बनिया व्यापारी रहता था जिसकी एकमात्र पुत्री लतिका थी। जिस प्रकार पूरे नगर में यशमणि अपनी सुंदरता के लिए प्रसिद्ध था, उसी प्रकार लतिका जैसी सुंदर और प्यारी कन्या उस नगर में दूसरी नहीं थी। बचपन से ही यशमणि और लतिका में मित्रता थी। वे दोनों एक ही स्कूल में पढ़े और साथ-साथ खेले थे। लतिका की मां यशमणि को बहुत चाहती थी। उसकी इच्छा थी कि वह अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दे। यशमणि की भी यही इच्छा थी। लतिका भी यशमणि को चाहती थी किन्तु उसका पिता बहुत लालची आदमी था।

पहाड़ी प्रदेश में जहां वे लोग रहते थे, वहां लड़की वाले लड़के वालों से रुपये लेकर अपनी लड़की की शादी करते थे। यद्यपि लतिका का पिता भी यशमणि के स्वभाव और उसकी सुंदरता के

कारण उसे बहुत चाहता तो था, किन्तु वह कहता था—''यशमणि तुम यदि मुझे बीस हजार रुपये लाकर दे दो, तो मैं लतिका का विवाह तुम्हारे साथ कर सकता हूं।''

बेचारा यशमणि कहां से इतनी बड़ी रकम लाकर देता? इतना धन जुटाना उसके बस की बात नहीं थी। उस नगर में कई ऐसे लोग थे जो यशमणि के साथ अपनी कन्या का विवाह खुशी से करने को तैयार थे, किन्तु वह केवल लतिका से ही विवाह करना चाहता था। लेकिन लतिका से विवाह करने में उसके पिता की बीस हजार की मांग अड़चन डाल रही थी इसलिए वह चिंतित और दुखी रहता।

यशमणि का एक घनिष्ठ मित्र नीलाम्बर भी उसी शहर में रहता था। वह कुशल कलाकार था। ऐसी सुंदर-सजीव मूर्तियां बनाता था कि उन्हें देख कर ऐसा लगता था जैसे वे अब बोलने ही वाली हैं। नीलाम्बर भी यशमणि को बहुत प्यार करता था। उसका निश्छल व्यवहार और मौजी स्वभाव उसे पसंद था। यशमणि भी नीलाम्बर से बहुत स्नेह करता था। अपने मन की सब बातें उससे कह देता था। लतिका के बारे में भी उसने सब कुछ अपने मित्र को बता दिया था। यशमणि नीलाम्बर की कला से प्रभावित था और नीलाम्बर उसके स्वभाव, सुंदरता और उदारता के कारण उसे प्यार करता था।

एक दिन यशमणि नीलाम्बर के घर गया। उस समय वह एक भिखारी की मूर्ति बना रहा था। इस मूर्ति को वह काफी दिनों से बना रहा था। अब मूर्ति लगभग पूरी हो चुकी थी। केवल उसमें अंतिम निखार देना बाकी था। जिस भिखारी को सामने बैठा कर वह मूर्ति बना रहा था, वह फटे चिथड़े कपड़ों में दीन और उदास खड़ा था। कमजोरी से उसके पैर कांप रहे थे। गालों और आंखों के नीचे झुर्रियां पड़ी हुई थीं। वह एक लकड़ी के सहारे, हाथ में भीख मांगने का कटोरा पकड़े खड़ा था। नीलाम्बर ने उसकी बिल्कुल वैसी ही मूर्ति बनाई थी।

यशमणि बड़ी देर तक कभी भिखारी को तो कभी उसकी मूर्ति को देखता रहा, किन्तु सबसे ज्यादा भिखारी की दीन दशा पर उसका ध्यान लगा था। उसे देख कर वह हृदय से दुखी हो रहा था।

वह उठ कर अपने मित्र के पास गया और उसके कान में फुसफुसा कर बोला—''नीलाम्बर, यह भिखारी तो बहुत गरीब और दुखी मालूम पड़ता है।''

मूर्ति बनाने के काम को बिना रोके ही मित्र ने कहा—''हां यह बात तो है ही। तुम क्या एक वृद्ध भिखारी से सुखी और प्रसन्न होने की आशा करते हो?''

यशमणि ने फिर पूछा—''तुम इसे यहां बुला कर इसकी मूर्ति बनाने के लिए क्या पारिश्रमिक देते हो?''

''दो रुपये प्रति घंटा देता हूं उसे,'' नीलाम्बर ने जवाब दिया।

''और मूर्ति बनाने के बाद तुम्हें इसका क्या मिलेगा?'' यशमणि ने प्रश्न किया।

इस पर नीलाम्बर ने सिर उठा कर यशमणि की तरफ देखा और मुसकरा कर कहा— "करीब दो हजार रुपये तो मिल ही जाएंगे। मूर्ति भी तो सुंदर बनी है न।"



"हां इसमें कोई संदेह नहीं कि तुमने इसकी बेजोड़ मूर्ति बनाई है। कमाल की कला दिखाई है तुमने, किन्तु तुम तो इससे हजारों रुपये कमा लोगे और जिसकी मूर्ति तुम बना रहे हो वह भिखारी का भिखारी ही रहेगा। क्या इसके साथ यह अन्याय नहीं है नीलाम्बर?" यशमणि ने उत्तेजित होकर पूछा।

"यशमणि तुम यह भूल रहे हो कि एक मूर्ति बनाने में मुझे कितना परिश्रम करना पड़ता है। रात-दिन छेनी हथोड़े चला कर खून-पसीना एक हो जाता है मूर्तिकार का, " नीलाम्बर ने अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा और मूर्ति बनाने में मस्त हो गया।

यशमणि ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बैठ कर उसे मूर्ति बनाते देखता रहा। इतने में बाहर से किसी ने नीलाम्बर को आवाज लगाई। वह कमरे से उठ कर बाहर चला गया और जाते-जाते यशमणि से कहता गया— "मैं अभी आता हूं। तुम बैठो।"

भिखारी आराम करने की दृष्टि से पास में रखे स्टूल पर बैठ गया। यशमणि को लगा कि वह थका ही नहीं भूखा भी है। उसका हृदय दया से भर गया। उसने सोचा कि इसे कुछ देना चाहिए। किन्तु उसके पास केवल तीन रुपये और कुछ खुले पैसे ही थे। बस इतनी ही पूंजी उसके पास थी। अभी बुआ के पास से रुपये आने में कई दिन बाकी थे। उसने सोचा इस सामने बैठे गरीब आदमी को इन रुपयों की मुझसे ज्यादा आवश्यकता है।

यशमणि उठा और कोने में बैठे भिखारी के पास जाकर जेब से तीन रुपये निकाल कर उसके कटोरे में धीरे से डाल दिए। उसे लग रहा था कि जो कुछ वह दे रहा है वह बहुत थोड़ा है किन्तु इससे अधिक उसके पास था भी नहीं। इसी का संकोच था उसे। उसकी आंखें भिखारी के प्रति दया और संकोच से भरी थीं।

भिखारी ने चौंक कर उसकी तरफ प्रसन्नता से देखा और धीरे से कहा– ''ईश्वर तुम्हारा भला करे।''

यशमणि इसके बाद वहां नहीं रुक सका और नीलाम्बर के आने से पहले ही वहां से उठ कर घर की तरफ चल दिया। अब सवारी के लिए भी उसके पास पैसे नहीं थे, इसलिए उसे पैदल ही घर जाना पड़ा।

लगभग एक सप्ताह बाद यशमणि की भेंट नीलाम्बर से एक पार्क में हुई। दोनों एक स्थान पर बैठ कर बातें करने लगे। ''तुमने मूर्ति पूरी कर ली मित्र?'' यशमणि ने नीलाम्बर से पूछा।

नीलाम्बर ने कहा– ''अरे मैंने तो उसे परसों बेच भी दिया। यहां के नामी सेठ जीवनदास ने मुझे उसके पांच हजार रुपये दिए। और हां, वह भिखारी तुमसे बड़ा प्रसन्न मालूम पड़ता था। तुम्हारे बारे में बहुत कुछ पूछ रहा था।''

यशमणि की आंखों के आगे भिखारी की शक्ल घूम गई। बोला– ''बेचारा! कितना गरीब और दुखी था। कितने फटे-चिथड़े कपड़े पहने था। नीलाम्बर, मैं उसे अपने कुछ कपड़े देना चाहता हूं। क्या वह ले लेगा?''

नीलाम्बर उसकी बात सुन कर मुसकराया– ''मैं उससे पूछूंगा। वैसे वह उन्हीं कपड़ों में जंचता है।''

यशमणि उसकी बात सुन कर कुछ झुंझला-सा गया और बोला–''तुम कलाकार होकर भी इतने कठोर क्यों हो नीलाम्बर?''

''नहीं यशमणि मैं कठोर नहीं हूं। हम कलाकार गरीब और अमीर दोनों को उन्हीं की अवस्था में स्वीकार करते और देखते हैं और तभी उनकी सही नकल बना सकते हैं। खैर छोड़ो इन बातों को। यह बताओ कि लतिका के साथ तुम्हारे विवाह का क्या हुआ? वह मेरा भिखारी भी इस विषय में बहुत उत्सुक है। लतिका को वह देखना भी चाहता है। तुम्हें देख कर तो वह प्रभावित है ही,'' नीलाम्बर ने उसे बताया।

यशमणि बुरी तरह से चौंक गया–''एक भिखारी मेरे और लतिका के बारे में पूछ रहा है? आखिर क्यों? क्या तुमने उससे मेरे और लतिका के विषय में बातें की थीं?''

''हां, मैंने उसे तुम लोगों के बारे में सब कुछ बता दिया है। वह लतिका के बाप को अच्छी तरह जानता है। वह लालची और कठोर पिता अपनी पुत्री के विवाह के लिए बीस हजार रुपये की मांग कर रहा है, मैंने यह भी उसे बता दिया है,'' नीलाम्बर ने बड़ी सहज मुद्रा में कहा।

यशमणि अपने मित्र की बात सुन कर क्रोध से चिल्ला पड़ा—"क्या हो गया है नीलाम्बर तुम्हें? एक भिखारी को मेरे और लतिका के बारे में दिलचस्पी क्यों हो सकती है? तुम्हें हमारे सम्बंध में सब बातें उसे बताने का कोई अधिकार नहीं था। आखिर मेरी व्यक्तिगत बातें बताने के लिए वह भिखारी ही मिला था तुम्हें?"

लेकिन यशमणि के क्रोध की जैसे नीलाम्बर को कोई चिन्ता नहीं थी। वह हंसते हुए कह रहा था, "तुम जानते हो यशमणि वह भिखारी कौन है? वह साधारण आदमी नहीं है। अपार सम्पत्ति का स्वामी, वह देश का सबसे धनी व्यक्ति है। सोने-चांदी के खजाने हैं उसके पास।"

यशमणि ने अविश्वास से पूछा—"अरे! क्या कह रहे हो तुम?"

"हां, मैं सच कह रहा हूं। मेरे इस करोड़पति भिखारी को तरह-तरह की वेशभूषा में अपनी मूर्ति बनवाने का शौक है। मैं पहले भी उसकी कई मूर्तियां बना चुका हूं। तुम्हें याद होगा मैंने एक साधु की मूर्ति बनाई थी। वह भी मेरे इसी करोड़पति भिखारी की ही थी। जब वह मेरे पास आता था तब भिखारी का वेश धारण कर लेता था। वह बहुत अच्छा अभिनय भी कर लेता है। भिखारी बन कर कैसी दीनता और गरीबी के भाव उसके चेहरे पर उभरे थे, तुमने तो देखा ही था। अब मैं तुम्हें बता ही दूं कि वह भिखारी और कोई नहीं स्वयं सेठ जीवनदास हैं," नीलाम्बर ने उसे बताया।

यशमणि हड़बड़ा कर खड़ा हो गया। उसे लगा जैसे वह आसमान से गिर पड़ा हो। उसने अपना सिर पकड लिया। "हे भगवान! सेठ जीवनदास को मैंने उस दिन तीन रुपयों की भीख दी थी, यह क्या किया मैंने!"

अब नीलाम्बर के चौंकने की बारी थी, "तुमने सेठ को तीन रुपयों की भीख दी?" वह ठठा कर हंसने लगा। हंसते-हंसते उसका बुरा हाल हो रहा था, वह पेट पकड़ कर बैठ गया।

"कितने भोले हो मित्र तुम। सेठ जीवनदास और तीन रुपये!" वह हंसता चला जा रहा था।

"हां नीलाम्बर मैंने सचमुच उसे दीन भिखारी समझ कर तीन रुपये उसके भिक्षा-पात्र में डाले थे। हाय! मैं कितना मूर्ख हूं। काश मैं जानता कि वह सेठ जीवनदास हैं। आखिर तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया नीलाम्बर? मैं ऐसी मूर्खता तो नहीं करता," कह कर वह दुखी होकर वहीं थका-सा बैठ गया। उसकी आंखें शर्म से झुक गई थीं।

नीलाम्बर ने हंसते हुए कहा—"मुझे क्या मालूम था कि तुम ऐसी उदारता दिखाओगे। फिर मैं भिखारी के रूप में बैठे इतने बड़े सेठ का तुमसे परिचय भी कैसे कराता और तुम उस दिन रुके भी नहीं। मेरे वापस आने तक तथा सेठ के अपनी वेशभूषा बदलने से पहले ही तुम उठ कर चल दिए थे। तुमसे कुछ कहने-सुनने का मौका ही नहीं मिला मुझे।"

"हाय! सेठ मुझे कितना मूर्ख समझते होंगे?" पछताते हुए यशमणि ने कहा।

नीलाम्बर बोला—"नहीं मित्र ऐसी बात नहीं है। वह तुमसे बहुत प्रसन्न और प्रभावित हैं। इसका कारण वह तुम्हारी तीन रुपयों की भिक्षा थी यह मुझे नहीं मालूम था और न ही सेठ ने मुझे बताया। वह बहुत समझदार और दयालु व्यक्ति हैं। कभी न कभी किसी रूप में वह तुम्हारे इस उदार और निश्छल व्यवहार का बदला जरूर चुकाएंगे।"

"हे राम! अब मैं क्या करूं? मैं तो अब कभी उनके सामने सिर भी नहीं उठा सकता। मैं अब घर जा रहा हूं।"

नीलाम्बर ने समझाया—"इसमें दुखी होने की कोई बात नहीं है मित्र! आखिर तुमने यह सब अनजाने में ही तो किया है। इतनी जल्दी घर जाने की भी क्या जरूरत है। रुको हम लोग नदी के किनारे चल कर बैठते हैं।"

"नहीं नीलाम्बर मैं अब कहीं नहीं जा सकता," कह कर वह घर चला गया। वह सचमुच बहुत लज्जित था।

दूसरे दिन प्रात:काल यशमणि सोकर उठा ही था कि किसी ने उसका द्वार खटखटाया। उसने द्वार खोला तो एक वृद्ध व्यक्ति, सुनहरा चश्मा लगाए खड़ा था। उसके बाल बिलकुल सफेद थे। यशमणि रात भर सेठ के बारे में सोचता रहा था। दरवाजा खटका तो वह उठ तो गया लेकिन उसके दिमाग में सेठ की बातें ही घूम रही थीं। उसने जब दरवाजे पर उस वृद्ध व्यक्ति को देखा तो उसे अपनी बात कहने का मौका दिए बिना ही वह अनायास उससे पूछ बैठा—"क्या आपको सेठ जीवनदासजी ने भेजा है?"

व्यक्ति मुसकराया—"हां सेठ ने।" वह इतना ही कह पाया था कि उसने उस व्यक्ति की बात बीच में ही काट कर कहा—"मैं अपनी मूर्खता के लिए बहुत लज्जित हूं। मैं उस दिन सचमुच उन्हें नहीं पहचान पाया था। मैं उनसे किसी दिन क्षमा मांगने आऊंगा। क्षमा कर देंगे ना वह मुझे?"

वृद्ध की आंखों में एक चमक सी झलकी। वह यशमणि के चेहरे की ओर देख कर मुसकराया और बोला—"तुम जरूर उनसे मिलना। वह तुम्हें क्षमा कर देंगे। हां, सेठ जीवनदास ने तुम्हें यह पत्र दिया है।"

यह कह कर वह एक बंद लम्बा लिफाफा यशमणि के हाथ में थमा कर तुरंत वापस चल दिया। यशमणि उससे कुछ और बातें करना चाहता था किन्तु वह व्यक्ति वहां रुका ही नहीं। उसके इतनी जल्दी चले जाने पर उसे अजीब सा लगा।

उसके जाने के बाद यशमणि ने जल्दी से पत्र खोला। छोटा सा पत्र था—'तुम्हारे और लतिका के विवाह के लिए हार्दिक शुभकामनाओं के साथ।'

पत्र के साथ बीस हजार रुपये का एक चेक भी रखा था। एकाएक यशमणि जैसे सोते से जाग पड़ा। उसे लगा—'अरे यह स्वयं सेठ जीवनदास ही तो नहीं थे कहीं?'

गाड़ी के दूर जाने और घोड़ों के टापों की आवाज आ रही थी।

"हाय! मैं कितना मूर्ख हूं। बार-बार धोखा खा जाता हूं। अपने घर में आए सेठजी को न पहचान सका?" उसने अपने आप से कहा और हाथ में चेक पकड़े अपने शुभचिंतक, उदार सेठ के प्रति मन ही मन नतमस्तक हो गया।

उसके और लतिका के विवाह के बीच बीस हजार की बाधा की दीवार को सेठ ने गिरा दिया था।

कुछ दिन बाद यशमणि की लतिका से शादी हो गई। सेठ जीवनदास भी वर और वधू को आशीर्वाद देने विवाह में पधारे।

आशीर्वाद

दिसम्बर के जाड़े की रात थी, लगभग ग्यारह बजे थे । किसी ने दरवाजा खटखटाया। मीना सो गई थी । उठने में उसे कष्ट हुआ । आश्चर्य भी कि इतनी रात को कौन हो सकता है? दरवाजा खोलने से पहले उसने खिड़की से झांका और पूछा—"कौन है?"

भारी भरकम आवाज आई—"मैं हूं मौसी, बब्बू।"

मीना सकते में आ गई। दो पल तो सोचने में लग गए किवाड़ खोले या न खोले। बब्बू उसके ही गांव का रहने वाला था। बचपन से खराब संगति में पड़ गया था। मां मर चुकी थी। पहले घर में छोटी-छोटी चोरी करनी शुरू की, फिर पास-पड़ोस में। अब तो वह पक्का चोर बन चुका था। एक बार किसी का सूटकेस चोरी करके चलती गाड़ी से कूदने में उसकी टांग भी कट गई थी। लेकिन उसने चोरी करना फिर भी नहीं छोड़ा था। सुना था कि किसी बड़े अफसर के घर में चोरी करते समय पकड़ा गया था और इलाहाबाद में ही तीन साल से जेल काट रहा था। मीना की नौकरी भी यहीं एक म्यूनिस्पल बोर्ड के स्कूल में लग गई थी। एक लड़का था जो मेरठ में नौकरी कर रहा था। अब वह अकेली किराए के मकान में रहती थी। बब्बू मीना को मौसी कहता था। उसे जेल में ही पता लग गया था कि मीना मौसी भी इलाहाबाद में नौकरी कर रही है।

'किवाड़ तो खोलना ही होगा। न खोलने का बहाना भी क्या कर सकती हूं? क्या कहूं-कि मैं घर में अकेली हूं और क्योंकि तुम एक चोर हो इसलिए मैं तुमसे डरती हूं। छिः! कितनी बुरी बात होगी यह कहना। दरवाजे पर खड़े आदमी को कैसे लौटा सकती हूं,' सोच कर मीना ने किवाड़ खोल दिए। खट-खट बैसाखी को बगल में दबाए बब्बू मुस्कराता हुआ अंदर कमरे में आ गया। जेल से अच्छा तंदुरुस्त होकर लौटा था। हां, कपड़े गंदे थे। घुंघराले बालों में धूल भी भरी थी। आते ही उसने मौसी के पैर छुए। मीना बिना कुछ बोले उसका मुंह देख रही थी।

"आज सुबह ही जेल से छूटा हूं मौसी। रात होने का इंतजार कर रहा था। अब छिप कर आया हूं। इस कटे पैर और बैसाखी के कारण सबकी निगाहों में जल्दी आ जाता हूं। जिसने एक बार देख लिया मुझे, फिर नहीं भूलता। तुम्हें तो सभी यहां पहचानते हैं मौसी। मुहल्ले में आकर भटकना नहीं पड़ा। बस एक से तुम्हारा नाम लेकर पता पूछा और सीधे यहां पहुंच गया," एक सांस में वह सब कुछ बता गया।

मीना उससे यह नहीं पूछ सकी कि— जेल से लौट कर यहीं आने की क्या जरूरत थी? क्या पूरी दुनिया भर में एक मौसी ही मिली थी शरण लेने के लिए? सुबह 10 बजे जब वह नौकरी पर चली जाएगी तब वह कहां रखेगी उसे? अकेले घर में वह ताला लगा कर स्कूल चली जाती है और शाम को चार बजे आकर ताला खोलती है। अभी पिछले महीने ही अकेला घर देख कर किसी ने दिनदहाड़े

ताला तोड़ कर जो कुछ उसके गहने-कपड़े थे चोरी कर लिए थे और अब कोई आया भी है, तो एक चोर। मीना को अपने भाग्य पर हंसी आ रही थी।



फिर भी शराफत के नाते मीना ने पूछा—"बब्बू अच्छे तो हो न? कुछ खाया-पिया है सुबह से या नहीं? अब आगे क्या करने का इरादा है तुम्हारा?"

बब्बू हंसा और बोला—"सुबह 10 बजे छूटा था जेल से। छूटने से पहले जेल वालों ने ही कुछ खिला दिया था। पांच रुपये जेलर ने अपने पास से दिए थे और दो-चार रुपये जब जेल में लाया गया था तब से जेब में पड़े थे उन्हें भी उसने मुझे वापस कर दिया था। दोपहर को उनसे एक होटल में छक कर रोटियां खाईं। फिर अब तो घर में ही आ गया हूं। सवेरे ही खाऊंगा मौसी। अब तुम्हारे यहां मुझे कोई चिंता नहीं है।"

भला भानजे को मौसी के घर में क्या चिंता हो सकती है? वैसे उसकी यह मौसी उम्र में बहुत बड़ी तो न थी और न ही बब्बू ही बच्चा था, लेकिन मौसी तो मौसी ही होती है। मीना को अपने पद का मान रखना ही था। उसने एक कम्बल, दरी और दो मोटी चादरें बब्बू को दीं। कमरे के फर्श पर बिस्तर बिछा कर बब्बू सो गया। मीना इस अचानक आए बब्बू को देख कर समझ गई कि अब उसका कुछ दिनों तक इसी घर में डेरा जमेगा। उसकी छोटी-सी नौकरी थी और थोड़ा सा वेतन था। लेकिन इससे क्या होता है? घर आए मेहमान का, चाहे वह कैसा भी क्यों न हो, निरादर तो नहीं कर सकती थी मीना। थोड़ी देर तक तो वह सो नहीं पाई। उसे तरह-तरह की चिंताएं सता रही थीं। फिर उसने अपने मन को समझाया, 'चोर है तो क्या हुआ। वह तो इसे अपना ही घर समझ कर आया है। अपने ही घर में तो कोई सेंध नहीं लगाता।' स्वयं को यह समझा कर मीना सो गई। दूसरे कमरे में

बब्बू भी निश्चित होकर जल्दी ही खर्राटे भरने लगा। दिन भर का थका-मांदा तो था ही। साथ ही काफी समय से जेल के कष्टों को भोगता रहा था।

सुबह जब मीना उठी, बब्बू नहा-धोकर साफ कपड़े पहन कर बैठा हुआ बीड़ी पी रहा था। रंग तो उसका खूब साफ था ही। स्नानघर में रखा तेल अपने काले घुंघराले बालों में लगा कर कंघी करके वह एक सभ्य, शरीफ इंसान लग रहा था। इस समय उसे देख कर कोई चोर नहीं कह सकता था।

मीना ने चाय बनाई, उसे भी दी। फिर वह जब खाना बनाने की तैयारी करने चली, तब बब्बू ने रोका—"मौसी तुम जाओ अपने पढ़ने-लिखने का काम देखो, खाना मैं बनाऊंगा। अच्छा बना लेता हूं। मेरे हाथ का बना खाना खाकर भी देखना आज। जब तक मैं हूं तुम्हें रसोईघर में आने की जरूरत नहीं है। बस यह बता दो कि कहां क्या रखा है और क्या-क्या बनाना है।"

इस तरह बब्बू रसोई का सारा काम देखने लगा। एक दिन बब्बू बड़े सहज ढंग से बोला—"मौसी कुछ पैसे दो तो अपनी जरूरत के कुछ कपड़े ले आऊं।"

मीना ने चुपचाप उसे पैसे दे दिए। वह सोचती थी कि वह इतने अपनत्व से कह रहा है तो वह उसे कैसे कह सकती है कि तुम्हारी जरूरत के लिए मेरे पास पैसे नहीं हैं या तुम्हारा खर्च मैं नहीं उठा सकती। भला कहां जाएगा वह? कौन है यहां उसका? यदि कहीं जाएगा तो फिर चोरी करेगा।

एक दिन जब बब्बू ने मौसी से सुना कि कोई उसके गहने आदि भी चुरा कर ले गया है तब उसे बड़ा दुख हुआ। कहने लगा—"तुम कहो तो मौसी, मैं तुम्हारी चोरी का पता लगा दूं। तुम आज्ञा दो तो मैं दो ही दिन में चोर को लाकर तुम्हारे सामने खड़ा कर दूं। लेकिन इसके लिए मुझे चोरों से दोस्ती करनी पड़ेगी। उनके कामों में हाथ बंटाना पड़ेगा। समझ लो मुझे खुद भी चोरी करनी पड़ेगी। यहां के कई नामी चोरों को मैं जानता हूं।"

मीना बोली—"नहीं! नहीं! बब्बू। मुझे चोरों का पता नहीं लगाना है। अपना चोरी गया सामान भी मुझे नहीं चाहिए। वह सब मेरे भाग्य का होता तो चोरी ही क्यों होता। मैं नहीं चाहती कि मेरे लिए तुम फिर चोरी जैसा गंदा काम शुरू करो। यही फिर से करना था तो यहां आने की ही क्या जरूरत थी?"

सुन कर बब्बू की आंखों में चमक उभर आई और वह गम्भीर हो गया। वह बोला—"मौसी कोई आदमी जन्म से चोर या डाकू नहीं होता। वह बनाया जाता है। मेरे घर में भी सुनारी का काम होता था। मैं अपने बाप और बड़े भाइयों को ग्राहकों के सोने-चांदी के गहने की चोरी करते देखता था। झूठ बोलना, चोरी करना मैंने घर से ही सीखा था। सौतेली मां का दुर्व्यवहार, पिता की डांट और मार ने मुझे आवारा और चोर बना दिया। तुम्हारे साथ रह कर आज मुझे महसूस हो रहा है कि मैं चोर नहीं, एक शरीफ इंसान हूं। यहां मुझे लग रहा है कि मैं भी एक इज्जतदार आदमी हूं। यहां के पास-पड़ोस में जाता हूं तो लोग मुझसे मान-सम्मान से पेश आते हैं। मैं अब चोरी नहीं करना चाहता मौसी। एक अच्छा इंसान बनना चाहता हूं। मैं अपनी मेहनत की कमाई खाना चाहता हूं।

मुझे लगता है कि तुम्हारा पवित्र भोजन और ईमान की कमाई खाकर मेरे अंदर का सोया हुआ शरीफ इंसान जाग रहा है, मौसी।'' कहते-कहते बब्बू भावुक हो उठा।

उसकी बातें सुन कर मीना का सिर भी गर्व से ऊंचा उठ गया। उसे लगा कि इसे उस रात अपने घर में शरण देकर उसने कोई गलती नहीं की, बल्कि एक पुण्य का काम किया है।

इस तरह बब्बू एक महीने तक मौसी के घर में रहा। उसका रूप-रंग निखर आया। उसके उठने, बैठने, बातचीत करने और व्यवहार में अब बहुत अंतर आ गया था। मीना बब्बू के विश्वास पर पूरा घर खुला छोड़ कर स्कूल चली जाती थी। वह पूरा घर सम्भालता। अब तो कभी-कभी मीना को ही उससे पूछना पड़ता था कि कौन सी वस्तु कहां रखी है। बब्बू पर इतना विश्वास कभी किसी ने नहीं किया था। उसके पिता और सगे भाइयों ने भी नहीं। उसके घर के लोग तो उस पर शक ही करते थे और रुपये-पैसे उससे छिपा कर रखते थे।

एक दिन वह मौसी से कहने लगा–''मुझे कुछ पैसे मिल जाते तो मैं कुछ धंधा कर लेता। गाड़ी में मूंगफली-चना ही बेच लेता।''

मीना हंसी– ''रेल में फिर जेब काटने का धंधा करने की सोच रहे हो क्या बब्बू?''

''नहीं मौसी, तुम्हें मुझ पर बिलकुल विश्वास नहीं है अब भी? मैंने कह दिया न कि मैं अब चोरी या पाकेटमारी का काम नहीं करूंगा। तुम जैसे भी, सौ-पचास रुपये का इंतजाम कर दो। फिर देखना मैं उससे कमाई करके लाता हूं या नहीं।''

और एक दिन बब्बू मौसी से सौ रुपये लेकर अपना नया काम ढूंढने निकल पड़ा।

उसने गाड़ी में चना, मूंगफली बेचना शुरू कर दिया। पहले कभी वह शराब भी पी लेता था किन्तु जेल जाने के बाद उसे शराब पीने की आदत छूट गई। अब उसने हाथ में रुपये होने पर भी शराब पीने की बात नहीं सोची। छः महीने बाद एक दिन वह फिर इलाहाबाद मौसी से मिलने आया। उसने अपने लिए कुछ नए कपड़े बनवा लिए थे। मेहनत से कमाई करना उसने सीख लिया था।

फिर एक दिन उसने मीना के पास आकर कहा–''मौसी अब मैं बम्बई की तरफ जा रहा हूं। मुझे एक ऐसा आदमी मिल गया है जो मुझे वहां रात को सोने के लिए जगह दे देगा और बेचने के लिए कुछ उधार कपड़े भी दिलवा देगा। मैं पटरी पर कपड़े बेचने का धंधा करूंगा। मुझे आशीर्वाद दो मौसी। इतनी दूर जाने से पहले तुमसे मिलने ही आया हूं आज।''

बब्बू मौसी का आशीर्वाद लेकर चला गया। बीच में उसका एक पत्र आया था कि वह कुशलपूर्वक है। काम कर रहा है। उसके बाद सालों बीत गए उसकी कोई खबर मीना को नहीं मिली।

मीना को अपनी एक रिश्ते की बहन के पुत्र की शादी में एक बार बड़ौदा जाना पड़ा। वह बहन के साथ एक दिन बाजार गहने और कपड़े खरीदने जा रही थी कि किसी ने पीछे से आवाज दी—"मौसी!"

चौंक कर मीना ने घूम क्रर देखा। टेरीकाट का कुर्ता और सफेद धोती, पैर में पालिश किया हुआ चमचमाता जूता पहने बैसाखी पर टिका बब्बू खड़ा था। बैसाखी जमीन पर टिका कर उसने मौसी के पैर छुए। मीना ने देखा बब्बू एक सेठ लग रहा था। उसके मुंह पर आत्मविश्वास की झलक थी। आश्चर्य से वह उसे एकटक देखती रह गई।

बब्बू ने पूछा—"कहां ठहरी हो मौसी? मैं आज ही शाम को तुम्हारे पास आऊंगा। लेकिन अभी थोड़ी देर के लिए मेरी दुकान पर चलो न मौसी। अपनी चरण-धूल से मेरी दुकान पवित्र हो जाने दो एक बार," बब्बू ने प्रार्थना की।

मीना हंस दी और बहन के साथ बब्बू के पीछे-पीछे चल दी। एक छोटी-सी कपड़े की दुकान थी।

मीना ने पूछा—"और क्या कर रहे हो बब्बू यहां? कहां रह रहे हो? तुमने तो काफी समय से कोई खबर ही नहीं दी।"

"सब बातें शाम को आकर ही बताऊंगा। यहां अभी नहीं। तुम्हारे आशीर्वाद से ही मुझे सब कुछ प्राप्त हुआ है। बस तुम अपना पता दे दो मौसी। मैं तुम्हें मिलने आऊंगा। फिर तुम स्वयं ही सब कुछ देख लेना।"

शाम को एक टैक्सी मौसी की बहन के घर के सामने आकर रुकी। बैसाखी लिए बब्बू और उसके पीछे सिर ढके हुए एक नवयुवती उतरी। गोद में एक गोरा सा गोल-मटोल बच्चा लिए थी वह।

मीना बाहर आई। उसे समझते देर नहीं लगी कि बब्बू अब शादी कर चुका है और एक पुत्र का पिता भी बन गया है। उन्हें देख कर वह मुस्करा कर आगे बढ़ी। बहू ने आकर मीना के पैर छुए और गोद के बच्चे को उसके पैरों पर डाल कर उससे भी प्रणाम करवाया। मीना ने बच्चे को गोद में लेकर चूम लिया।

हंस कर बब्बू ने बच्चे से कहा— "आशिष यह तेरी दादी हैं। मौसी तुम्हारे ही आशीर्वाद का फल है यह सब। मेरे ससुर ने मुझे कपड़े की दुकान दिलवा दी है। घर बनवा रहा हूं जिसका गृह-प्रवेश मैं तुम्हारे हाथों से ही करवाऊंगा। गृह-प्रवेश के समय मौसी मैं खुद लेने आऊंगा तुम्हें इलाहाबाद से। और हां घर का नाम भी आशीर्वाद रख रहा हूं। ठीक है न मौसी?"

मीना प्रसन्नता और आश्चर्य से बब्बू, उसकी बहू और बच्चे को देख रही थी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह उन लोगों से क्या कहे?

उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि बब्बू इतनी जल्दी इतनी उन्नति कर लेगा। उसे लगा कि आज से दस वर्ष पहले उसने जो पौधा लगाया था उसमें फूल ही नहीं फल भी आ गए हैं। उसकी आंखों के सामने दिसम्बर की वह ठंडी रात घूम गई। जब जेल से छूटे बब्बू ने उसका दरवाजा खटखटाया था। वह वही सब सोच रही थी कि तभी बहन की आवाज से वह चौंक पड़ी—''अरे, मीना क्या सोचने लगी? इन लोगों को अंदर तो चलने को कहो। बेटे, बहू और पोते को कुछ खिलाओगी-पिलाओगी नहीं क्या? आओ भाई चलो अंदर चल कर बैठो। मेरी बहन तो तुम लोगों को देख कर इतनी खुश हो रही है कि वह अपने को ही भूल गई।'' सब लोग हंस पड़े।

बैसाखी पर खट-खट करता बब्बू अंदर बढ़ा और पीछे-पीछे गोद में बच्चा लिए उसकी बहू।

मां

अरुण अपनी मां की एकमात्र संतान था। उसके पैदा होने से पहले ही उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था। पति के न रहने पर कितनी ही मुसीबतें झेल कर, मां ने अपने पुत्र का लालन-पालन किया था। मां के मन में एक आशा सदैव रही थी कि बड़ा होकर उसका अरुण अच्छी शिक्षा प्राप्त करेगा, वह सेना में अधिकारी बनेगा, देश की सेवा करेगा और भारत मां का सच्चा सपूत बनेगा। आज ईश्वर ने उसकी सभी आशाएं पूरी कर दी थीं। उसके सपने सच होने का समय आ गया था। मां के प्यार और आदर्शों की छांह में पला छोटा सा पौधा अरुण आज एक बड़े पेड़ की तरह लहलहा रहा था। अरुण सेना में अफसर के पद पर चुन लिया गया था।

उस समय चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया था और उसे शीघ्र ही सीमा पर भेजा जा रहा था। किन्तु मालूम नहीं क्यों खुश होने पर भी मां की आंखों से आंसू बह रहे थे।

अरुण कालेज में प्रोफेसरों का प्यारा शिष्य था और मित्रों का दुलारा साथी था। वह पढ़ने में तेज और स्वभाव का मीठा था। उसके सेना में कमीशन पद पर चुने जाने की घोषणा आज ही हुई थी। अरुण ने सोचा था कि यह खुशखबरी वह स्वयं जाकर मां को देगा किन्तु उसके घर पहुंचने से पहले ही उसके मित्र मिठाई के लालच में यह सूचना मां को पहुंचा आए और मां से मिठाई भी खा आए। इधर कालेज में अरुण के मित्र घेर कर उसे बधाई दे रहे थे। प्रोफेसर भी उसे शाबाशी दे रहे थे। मां ने जब सुना तो खुश भी हुई किन्तु बेटे की जुदाई के कारण उसकी आंखों में आंसू आ गए। यह तो वह अच्छी तरह समझती थी कि देश पर संकट के समय एक युवक का क्या कर्त्तव्य है। अपने बेटे के सेना में चुने जाने पर उसे गर्व भी था। फिर ये आंसू क्यों? यह बात उसे समझ नहीं आ रही थी।

जब उसकी आंखों का तारा अरुण उससे दूर चला जाएगा तब वह कैसे दिन काटेगी? वह जितना सोचती थी उतना ही उसका दिल भर-भर आता था। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि अरुण सचमुच उसे अकेला छोड़ कर बहुत दूर चला जाएगा।

अनजाने ही उसके गालों पर आंसू बहे जा रहे थे। इतने में द्वार खोलते हुए अरुण अंदर आ गया। मां ने झट से अपनी आंखें पोंछ लीं कि कहीं बेटे को उसके आंसू न दिखाई पड़ जाएं।

अरुण ने जब अपनी मां की ओर देखा तो पूछा, "तुम रो रही हो अम्मा?"

"नहीं तो रे! मैं तो खुश हूं। तू अफसर बन गया है न।" मां ने आंसू रोकने की कोशिश करते हुए कहा।

अरुण अपनी मां के ऊचे विचारों को समझता था। वह इतना तो जानता था कि देश की रक्षा में पुत्र को युद्ध में भेजने में उसकी मां कभी पीछे नहीं हटेगी। तभी तो उसने बिना किसी झिझक के सेना में नाम लिखवा दिया था। फिर आज मां की आंखों में आंसू क्यों? उसे आश्चर्य हो रहा था।

"अम्मा क्या तुम मेरे सेना में जाने के कारण रो रही हो? सच बताना क्या तुम नहीं चाहती कि मैं सेना में जाऊं? यदि एक बार तुम मुझे मना कर दो तो फिर देखना जो मैं एक कदम भी आगे बढ़ाऊं? तुम्हें दुखी करके मैं कहीं नहीं जाऊंगा। स्वर्ग का सुख भी मिले तब भी नहीं। एक मां को दुखी करके क्या मैं दूसरी मां को सुखी कर सकता हूं? कभी नहीं अम्मा मैं ऐसा कभी नहीं करूंगा," कहते-कहते अरुण का गला भी भर आया।



मां ने उसका सिर पकड़ कर छाती से लगा लिया। उसकी आंखें बरस-बरस कर पुत्र का सिर भिगोने लगीं। थोड़ी देर में शांत होकर वह बोली, "अरुण बेटा! क्या तू आज तक मुझे नहीं समझ पाया? तू यह सोचता है कि मैं इसलिए रो रही हूं कि तू मातृभूमि की रक्षा करने जा रहा है। पागल, मुझे तो गर्व हो रहा है कि मेरा नन्हा अरुण आज इतना बड़ा और योग्य हो गया है कि भारत मां की रक्षा कर सके। एक मां को छोड़ कर तू करोड़ों भारतीयों की मां की रक्षा करेगा। क्या इस बात पर मैं रोऊंगी? मुझे तो सुख और प्रसन्नता हो रही है अपने इस बेटे के सेना में अफसर होने पर।"

मां ने बेटे का मस्तक चूमते हुए कहा, "मेरा बेटा जरूर जाएगा। आज मां के द्वार पर लुटेरों ने हमला किया है तू उन्हें अपने मजबूत हाथों से मार कर भगाएगा।" मुझे तो बस इसलिए रुलाई आ रही है कि तू मुझसे दूर चला जाएगा। थोड़ी देर की रुलाई है बस। तू अपनी मां को इतना कमजोर मत समझ बेटे। मैं एक योग्य और वीर बेटे की मां हूं। जब तू दुश्मनों को खदेड़ कर लौटेगा, तब मैं तेरी आरती उतारूंगी और दुनिया से कहूंगी कि मेरे बेटे ने मेरे दूध की लाज रख ली है। जा बेटा जा। मेरा आशीर्वाद संकट के समय तेरी रक्षा करेगा।"

मां की बातें सुन कर अरुण का सिर गर्व से ऊपर उठ गया। फिर उसने अपने उठे हुए सिर को झुका कर मां के चरणों पर रख दिया।

कर्ज का प्रमाणपत्र

नंदू अपनी गरीबी से बहुत परेशान था । दिन में यदि एक बार भी उसे पेट भर खाना मिल जाता, तो वह अपनी जिंदगी के दिन जैसे-तैसे गुजार लेता, किंतु इतना भी उसके भाग्य में नहीं था। कभी-कभी तो उसे कई-कई दिन बिना कुछ खाए ही गुजारने पड़ते थे। आखिर तंग आकर उसने निश्चय किया कि वह किसी दूर प्रदेश में जाकर अपना भाग्य आजमाएगा।

एक दिन वह किसी अनजाने सफर पर जाने के लिए अनजानी दिशा को चल दिया। रास्ते में किसी से कुछ मांग कर या फिर जंगल में जो भी फल-फूल मिल जाता उससे ही पेट भरते हुए वह चलता गया।

इस तरह कई महीनों बाद एक दिन वह एक ऐसी जगह पहुंचा, जहां के लोग बिलकुल दूसरी तरह के थे। उनका रहन-सहन, वेश-भूषा बिलकुल अलग ढंग की थी। यहां तक कि उनका नाक-नक्श और रंग सभी कुछ भिन्न थे। ऊंचे-ऊंचे पहाड़ थे, जल से भरी नदियां थीं। आसमान को छूते ऊंचे पेड़ और रंग-बिरंगे सुंदर महकते फूलों से भरी घाटियां थीं तथा खेत लहलहा रहे थे। पक्के और खूबसूरत मकान थे, जिनके द्वार और आंगन साफ-सुथरे थे।

उन्हें देख कर लगता था कि वे सफाई और सुंदरता पसंद करने वाले लोग थे। उनके चेहरे देख कर ही मालूम हो जाता था कि सभी लोग सुखी, सम्पन्न और खुशमिजाज थे। कोई फटेहाल, चिड़चिड़ा और रोगी भी नहीं दिखलाई दिया नंदू को। बच्चों को हंसते, खेलते और कूदते देख कर नंदू को लगा जैसे वह स्वर्ग में पहुंच गया है। थका-हारा, भूखा-प्यासा वह एक छायादार पेड़ के नीचे बैठ कर सुस्ताने लगा।

नंदू को देख कर एक आदमी उसके पास आया और उससे कुछ पूछने लगा, किन्तु उसकी बात बिलकुल भी नंदू के पल्ले नहीं पड़ी। उसकी भाषा का एक शब्द भी जब वह नहीं समझा तब उस आदमी ने इशारे से उससे खाने के लिए पूछा।

नंदू के सिर हिला कर हां करने पर वह घर से खाना, फल और पानी लेकर आया। कई दिनों बाद पेट भर खाना मिला तो नंदू के निर्जीव शरीर में जैसे जान पड़ गई। उसने हाथ जोड़ कर संकेत से उस आदमी को नमस्कार किया और धन्यवाद दिया।

शाम हो चली थी। वह आदमी नंदू को अपने घर ले गया और उसे सोने के लिए एक साफ-मुलायम बिस्तर दिया। नंदू स्वादिष्ट भोजन करके और आरामदेह बिस्तर पाकर पहली बार गहरी नींद सोया। जागने पर उसने अनुभव किया कि इस प्रदेश के लोग खुशहाल और सम्पन्न ही नहीं, दिल के भी धनी हैं और अतिथि सत्कार भी करना जानते हैं।

वह कई दिनों तक वहां रहा। अब उसे वहां के लोगों की भाषा कुछ-कुछ समझ में आने लगी थी। टूटी-फूटी भाषा वह बोलने भी लगा था।

उसने अपनी गरीबी और मुसीबत का सब हाल अपने दयालु और उदार मेजबान को सुना दिया।

एक दिन उस आदमी ने पूछा—"नंदू तुम कुछ व्यवसाय क्यों नहीं करते?"

नंदू हंसा—"खाने को तो पास में फूटी कौड़ी भी नहीं है मित्र, फिर व्यवसाय कैसे कर सकता हूं? खेती के नाम पर गज-भर जमीन भी मेरे पास नहीं है।"

आदमी ने पूछा—"अगर मैं तुम्हें कुछ पूंजी दे दूं तो?"

नंदू प्रसन्नता से खिल उठा—"इससे बड़ी खुशी की और क्या बात हो सकती है मेरे लिए? पर मैं तो वैसे ही आपके अहसान से दबा जा रहा हूं, अब इतने बड़े अहसान को तो जिंदगी-भर नहीं चुका सकूंगा।"

उस आदमी ने उसे चांदी के सिक्के से भरी एक थैली लाकर दी। खुशी से नंदू की आंखों में आंसू भर आए। उसने कहा—"मेरे अच्छे भाई! तुमने विपत्ति के समय मेरी जो सहायता की है, उसे मैं जिंदगी-भर याद रखूंगा। जैसे ही मैं इस पूंजी से अपना व्यवसाय जमा लूंगा, तुम्हारा एक-एक पैसा चुका दूंगा। इस कर्ज के लिए तुम जैसा ठीक समझो मुझसे प्रमाण का कागज लिखवा लो। अपने पक्ष के गवाहों को भी बुलवा कर हस्ताक्षर करवा लो।"

नंदू ने बड़ी ईमानदारी से अपनी बात उस आदमी के सामने रखी, किन्तु नंदू की बात सुन कर वह आदमी चौंक पड़ा। गम्भीर होकर आश्चर्य से उसने कहा—"क्या तुम्हारे प्रदेश में ऐसा ही होता है?"

"हां, हमारे यहां जब कोई किसी को कर्ज देता है, तब वह कर्ज के कागज पर कर्ज लेने वाले का नाम, पता तथा रकम लिखवा कर उसके हस्ताक्षर करवा लेता है। एक या दो आदमियों को गवाह बना कर उनके हस्ताक्षर भी करवा लेता है। यह सब इसलिए जरूरी है कि यदि कभी कर्ज लेने वाले की नीयत बदल जाए और वह कर्ज की पूंजी न लौटाए, तो कर्ज देने वाला उस पर मुकदमा दायर करके गवाह की सहायता से तय किया गया ब्याज और कर्ज की पूंजी वसूल कर सकता है," नंदू ने उत्तर दिया।

नंदू बड़ी सहजता और भोलेपन से अपनी बात उस आदमी को बता रहा था। उसने ध्यान ही नहीं दिया कि उसकी बातें सुन कर उस आदमी की आंखों और चेहरे के भाव कैसे बदलते जा रहे थे। नंदू ने जैसे ही अपनी बात समाप्त की वह आदमी गम्भीर हो उठा। उसने झपट कर उससे अपनी चांदी के सिक्कों भरी थैली छीन ली।

नंदू भौंचक्का-सा उसे देखता ही रह गया। उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि एकाएक यह दयालु आदमी इतना कैसे बदल गया। उससे क्या गलती हो गई। वह समझ न सका। वह तो उसी के लाभ की बात उसे बता रहा था।



तभी उस आदमी ने अपनी बात स्पष्ट कर दी। वह बोला—"तुम्हारी बातें सुन कर मैं अब तुम्हें कुछ भी उधार नहीं दे सकता। लगता है कि तुम किसी बेइमान प्रदेश के नागरिक हो, जहां के लोग कर्ज लेकर वापस करने की नीयत नहीं रखते और कर्ज देने वाले को अपना ही पैसा वापस लेने के लिए मुकदमेबाजी करनी पड़ती है। हमारे यहां यह सब कुछ नहीं होता। यहां सभी लोग जरूरतमंद को उधार देकर उसकी सहायता करते हैं और उधार लेने वाला पैसा आते ही ईमानदारी से बिना मांगे कर्ज चुका देता है। हम न कागज पर रकम लिखवाते हैं, न लेने वाले के हस्ताक्षर लेते हैं और न गवाह आदि ही बुलाते हैं। मुझे नहीं मालूम तुम कहां से आए हो, तुम्हारा अता-पता क्या है। यदि तुम्हारी नीयत कर्ज चुकाने की नहीं होगी, तो तुम्हारे हस्ताक्षर किए प्रमाणपत्र होने पर भी मैं तुमसे अपनी पूंजी वापस नहीं ले सकता। तुम जाओ और अपने प्रदेशवासियों से ही उधार लो।"

उस आदमी की साफ-सुथरी दो-टूक बातें सुन कर नंद का सिर शर्म से झुक गया। सच बात है कि ईमानदार के लिए लिखा-पढ़ी की जरूरत नहीं है और बेईमान के लिए लिखा-पढ़ी, प्रमाणपत्र या गवाही सब व्यर्थ हैं।

राकेश की नाव बच गई

राकेश अपने माता-पिता का सबसे बड़ा बेटा था । उसके पिता अफसर थे लेकिन मां साधारण पढ़ी-लिखी महिला थी। बुरी संगत में पड़ जाने के कारण 14-15 वर्ष की छोटी सी उम्र में ही उसमें सभी गलत आदतें आ गई थीं। वह सिगरेट पीता था, पान खाता था और सिनेमा देखने का तो इतना शौकीन था कि हर दूसरे-तीसरे दिन वह सिनेमाघर में दिखाई देता था। लड़कों के साथ जुआ खेलते भी कई बार पकड़ा गया था। मां-बाप उसे समझा-समझा कर हार चुके थे। किन्तु राकेश पर कोई असर नहीं होता था।

उसकी एक दूर की मौसी थी, जो कानपुर के एक स्कूल में अध्यापिका थी। एक बार उसके यहां राकेश और उसके माता-पिता उनके लड़के की शादी में गए थे। राकेश ने शादी में आए कई मेहमानों की जेबें साफ करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी। जब लोगों ने शिकायत की तो राकेश की मां ने अपने बेटे की गलती को ढकने की कोशिश की और उल्टा शिकायत करने वालों को बुरा-भला कहा, किन्तु उसके पिता समझदार थे, वह चुप रहे। वह जानते थे कि मेहमानों के रुपये और दूसरा सामान उनके बेटे ने ही चुराया है। शादी में आए मेहमानों ने राकेश पर काफी ताने कसे, जिनका राकेश कुछ उत्तर न दे सका, बस आंख बचा कर सबके सामने से हट गया। एक मौसी ही थी जिसने राकेश से कुछ नहीं कहा और न ही उसे शक या शिकायत भरी दृष्टि से देखा ही। वह जब भी उससे बातें करती बिल्कुल साधारण ढंग से, जैसे उसे मालूम ही नहीं कि राकेश चोर है। यद्यपि राकेश की मौसी भी जानती थी कि चोरी राकेश ने की है। फिर भी उसने उसके पिता से कहा, "भाई साहब इस बच्चे को कुछ दिनों के लिए मेरे पास छोड़ दीजिए।"

"क्या कहती हैं, आप इसे पूरी तरह नहीं जानतीं, तभी ऐसी बात कह रही हैं। यह अभी पिछले माह ही अपनी मां के सोने और चांदी के गहने लेकर भाग गया था। वह तो हमारा भाग्य ही था कि हमें समय पर मालूम हो गया और हमने इसे स्टेशन पर गाड़ी आने के पांच मिनट पहले ही पकड़ लिया। आप के घर में भी भरा पूरा परिवार है। सामान तथा अन्य कीमती चीजें भी हैं। यदि इस चोर लड़के ने किसी पर हाथ मार दिया तो उस कलंक को हम जिंदगी भर नहीं धो सकेंगे! मैं यह गलती कभी नहीं कर सकता कि राकेश को आपके घर में छोड़ दूं। इसकी आदतों का फल हमें ही भुगतने दीजिए। हमारी ही गलती के कारण यह इतना बिगड़ गया। काश! हम पहले से ही जानते कि हमारा लड़का बुरी संगत में पड़ गया है," राकेश के पिता ने मौसी को समझाते हुए कहा।

संयोग से कुछ दिनों बाद राकेश के पिता का तबादला कानपुर में ही हो गया। मौसी ने उन्हें अपने मुहल्ले में घर दिलवा दिया। धीरे-धीरे राकेश मौसी के यहां आने-जाने लगा। मौसी के स्कूल जाने के पश्चात भी वह उनके घर आ जाता था और घंटों बहू से खूब घुलमिल कर बातें करता था।

जब राकेश की मां को यह पता चला तो एक दिन वह मौसी के यहां गई और कहने लगी—"देखो बहन, तुम राकेश की आदतें तो जानती ही हो। उस पर नजर रखना तथा चाभी, रुपये-पैसे उससे बचा कर रखना। अभी परसों ही मैंने एक मेज पर पांच रुपये रखे थे जो गायब हो गए। तुम तो जानती हो उसका छोटा भाई शम्भू बिलकुल ऐसी आदतों का नहीं है और न मीना में ही ऐसी आदतें हैं। तुम्हें भी सावधान किए देती हूं, फिर मुझे दोष मत देना।"



उस दिन छुट्टी का दिन था। मौसी की भी छुट्टी थी। राकेश सवेरे-सवेरे मौसी के पास पहुंच गया। मौसी ने कहा—"राकेश बाजार से मेरा कुछ सामान ला दोगे क्या?"

राकेश तुरंत बोल पड़ा—"क्यों नहीं ला दूंगा? यह भी क्या पूछने की बात है मौसी? लाओ लिस्ट दे दो कि क्या-क्या सामान लाना है।"

मौसी ने सामान की लिस्ट उसे थमा दी और 50 रुपये का नोट भी हाथ में दे दिया। वह बड़ी प्रसन्नता से बाजार चला गया। वह मौसी का काम करने के लिए हमेशा ही तैयार रहता था। जबकि उसकी मां को शिकायत रहती थी कि राकेश घर का कोई भी काम नहीं करता। जब भी मां कुछ काम के लिए कहती, वह मुंह बना कर घर से बाहर चला जाता। मां के गुस्सा होने की उसे बिलकुल चिंता नहीं थी। जब से वह कानपुर आया तब से तो अपने घर में ठहरता ही नहीं था। लेकिन अब उसने अपने दोस्तों के साथ घूमना छोड़ दिया था। वह अब सारे दिन मौसी के घर में रहता था। मौसी की बहू भी उससे बहुत काम करा लेती थीं। उनके काम करके राकेश को भी संतोष मिलता था।

दरअसल उसके घर में और मौसी के घर में एक खास अंतर भी था। अपने घर में उससे हर बात और हर चीज छिपाई जाती थी। चाभी तो मां हमेशा अपनी कमर में ही लटकाए रखती थीं। वैसे तो बाजार से कोई सामान राकेश से मंगवाया ही नहीं जाता था और यदि कभी मंगवाया भी जाता था तो उससे कई सवाल पूछे जाते थे—महंगी चीज क्यों लाया? इसका तो भाव कम है और

तुमने अपने लिए पैसा बचा लिया है क्या? इस तरह के सवालों से राकेश चिढ़ जाता था। मौसी के यहां बिलकुल इसका उलटा था। मौसी ने कभी कोई सामान उससे छिपा कर नहीं रखा। वह अकसर कहतीं—"राकेश मेरा पर्स दूसरे कमरे में रखा है, उसमें से रुपये तो निकाल लाना।"

इस पर राकेश पर्स ही उठा कर मौसी को पकड़ा देता। घर की चाभी भी ड्रेसिंग टेबल पर सामने ही पड़ी रहती। मौसी राकेश के बारे में सब जानती-समझती थीं किन्तु उन्होंने कभी उस पर शक जाहिर नहीं किया। उन्होंने उस पर पूरा विश्वास ही प्रगट किया। मौसी के इस व्यवहार को देख कर राकेश को जैसे अपने ऊपर भी विश्वास हो चला था।

उसे जो अपनापन यहां मिला वह अपने घर कभी नहीं मिला। अब सारे दिन वह यहीं रहता था इसलिए अब आवारा लड़कों की संगति से भी वह दूर हो गया था। उसकी अब हिम्मत भी नहीं पड़ती थी कि वह उस घर में सिगरेट पिए या पान खाकर, मुंह लाल करके सबके सामने आए। उसका सिनेमा जाना भी छूट गया था। अब तो उसे पैसों की कोई जरूरत ही नहीं रह गई। उसके पास यदि एक-दो रुपये रहते भी थे तो ऐसे ही पड़े रहते। फिर भला वह चोरी क्यों करता। बहुत तेजी से राकेश की बुरी आदतें छूटने लगीं। मौसी ने कभी उसकी किसी आदत पर न संदेह किया और न पुरानी आदतों का जिक्र ही किया। उस पर मौसी का विश्वास बना रहे इस बात की राकेश को चिंता थी। उसके व्यवहार से ही ऐसा लगता था। उसका स्वास्थ्य भी अब अच्छा हो चला था।

एक दिन मौसी ने कहा— "राकेश तुम स्कूल तो जाते नहीं हो तो यह बताओ कि पढ़ाई क्या बुढ़ापे में करोगे? अभी तक मैट्रिक भी पास नहीं किया है तुमने। खैर पिछली बात छोड़ो और मैट्रिक का प्राइवेट फार्म तुरंत भर दो।"

पहले तो वह झिझका किन्तु थोड़ी आनाकानी करने के बाद फार्म भरने को तैयार हो गया। पढ़ाई भी शुरू कर दी। किन्तु अधिकतर मौसी के यहां ही किताबें लाकर पढ़ाई करता। कुछ कठिनाई होती तो मौसी से ही पूछ लेता।

लेकिन अब राकेश की मां को यह सब अखरने लगा। उन्हें लगता कि उनका पुत्र उनके हाथ से निकला जा रहा है और दिन भर मौसी के यहां ही रहता है। मां की आज्ञा तो मानता नहीं, मौसी की हर बात मानता है और उनका सब काम खुशी-खुशी करता है।

वह उसके पिता से शिकायत करतीं—"तुम राकेश पर बिलकुल ध्यान नहीं देते। कितना आवारा हो गया है। कानपुर आकर तो दिन भर घर में उसकी शक्ल ही नहीं दिखती। घर में बस खाना खाने और सोने के लिए चला आता है।"

राकेश अपनी मां की इन बातों से बहुत चिढ़ता था और अकसर उन्हें बुरी तरह से जवाब दे देता था। मौसी के कानों में भी जब यह बात पड़ी तो वह दुखी हुई और राकेश को समझाया भी कि वह अपने घर में ही रहा करे किन्तु उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसका आना-जाना उनके यहां वैसा ही बना रहा और उसकी मां की चिढ़ बढ़ती जाती थी। मौसी ने एक बार उससे गम्भीरता से अपने यहां आने को मना किया तो वह दो दिन तक उनके यहां नहीं आया लेकिन अपने घर में भी नहीं रहा। दोनों दिन सिनेमा देखा और इधर-उधर समय गुजारता रहा। लेकिन ऐसा करने में अब उसे

खुशी नहीं होती थी। मौसी को भी यह सब अच्छा नहीं लगा। पर दोनों की मजबूरी थी। फिर भी वह तीसरे दिन अपने को रोक नहीं पाया और फिर से उसका मौसी के यहां आना-जाना शुरू हो गया। मौसी ने भी उसे कुछ नहीं कहा। वह भी मन ही मन खुश थी।

समय गुजरता गया। परीक्षा के दिन पास आए तब राकेश ने खूब मन लगा कर पढ़ाई की। वह अपने लिए पढ़ाई कर रहा है या मौसी के लिए यह वह खुद नहीं जानता था। हां, वह यह जरूर सोचता था कि यदि वह फेल हो गया तो मौसी को दुख होगा। वह उनकी नजर में गिर जाएगा। मौसी के प्रति उसका आदर और श्रद्धा के भाव उसे बहुत से गलत कामों से बचाते थे।

उसने अच्छी तरह पढ़ाई करके परीक्षा दी और सब यह देख कर चकित रह गए कि राकेश परीक्षा में पास भी हो गया। किन्तु मां ने कहा—''इतना बड़ा होकर यदि मैट्रिक पास भी कर ली तो क्या कमाल कर लिया? तेरी बहन मीना तो तुझ से तीन साल छोटी है फिर भी उसने पिछले साल ही मैट्रिक पास कर ली। तूने तो अभी तक मेरे पैसे ही बरबाद किए हैं।'' राकेश को यह सब सुन कर बहुत बुरा लगा और उसने गुस्से में मां से काफी कुछ बुरा-भला भी कह दिया।

मां ने भी क्रोध में कहा—''यही सब सीखता है मौसी के यहां तू? उन्होंने तुझे बिगाड़ दिया है।''

झगड़े की यह बात मौसी के कानों में भी किसी तरह पड़ गई। वह बहुत दुखी हुई. साथ ही उन्हें चिन्ता भी हुई कि यदि वह राकेश से सम्बंध तोड़ लेती हैं और उसका अपने यहां आना-जाना बंद कर देती हैं तो वह फिर बुरी संगत में पड़ जाएगा और उसमें फिर से बुरी आदतें पड़ जाएंगी। उन्होंने उसे एक जगह टाइप सीखने के लिए लगा दिया। अब वह उसी में व्यस्त रहता। उसका इधर-उधर घूमना तो अब छूट ही गया था। बीच-बीच में मौसी से भी मिलता रहता, पर अब वह पूरा दिन वहां नहीं रहता था। वह मन लगा कर टाइप का काम सीखने लगा। अब राकेश को अपनी मंजिल मिल गई थी और वह उस ओर चला जा रहा था। दो साल गुजर गए और राकेश अब एक अच्छा टाइपिस्ट बन गया था।

एक दिन वह सुबह ही सुबह आया और मौसी के पैर छुए। ''खुश रहो राकेश, लेकिन आज क्या बात हो गई, इतनी सुबह आकर पैर छूने की। कहीं तुम्हारी अम्मा ने तुम्हारी शादी का प्रबंध तो नहीं कर लिया? तब तो केवल पैर छूने से काम नहीं चलेगा,'' मौसी ने हंस कर कहा।

राकेश ने कहा—''मौसी मेरी बहू तो तुम्हीं को ढूंढनी होगी, लेकिन उसका तो अभी समय नहीं आया है। मैं तो यह बताने आया हूं कि मेरी नौकरी लग गई है। मैं एक प्रतियोगिता में बैठा था और उसमें सबसे अच्छा टाइप का काम मेरा ही था। कल से मैं नौकरी पर जाऊंगा। यह सब तुम्हारे प्रयत्न और आशीर्वाद का ही फल है कि मैं आज किनारे पर खड़ा हूं, नहीं तो मेरी नाव तो डूब ही गई थी मौसी!''

मौसी को भी लगा कि अनजाने ही उससे कुछ अच्छा काम हो गया है। राकेश आज इतना समझदार हो गया है कि मां-बाप के लिए चिंता या भार नहीं बल्कि उनकी जिम्मेदारी के भार को घटाने वाला बन गया है।

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

